मेरी यादें
MERI YADEN

रोशन लाल काचरू
Roshan Lal Kachru

मेरी यादें

रोशन लाल काचरू

Disclaimer:

This is a work of fiction. All the characters are fictional. Liberties have been taken with the names of the streets, lakes, rivers, historical places and names.

वन्दना

वन्दना करता हूँ माता सरस्वती की; जिनके चरण–कमल की शरण जाकर, जिनके आशीर्वाद से अनुग्रहीत होकर मैं अपनी लेखनी आगे बढ़ाता रहा। और यह पुस्तक 'मेरी यादें' पाठकगण के सम्मुख रखने में सफल हो सका।

पूज्यनीय हैं मेरे माता–पिता; जिनकी कृपा फलस्वरूप मैं अपने जीवन काल के उथल–पुथल को एक ओर संवार कर अपने भीतर बंद संस्मरणीय पिटारे का ढक्कन खोलकर पाठकगण के सम्मुख 'मेरी यादें' पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने में सफल हो सका।

लेखक

रोशन लाल काचरू

M 9682123232
9599322376

आभार

आभार प्रकट करता हूँ अपनी धर्म पत्नी श्रीमती आशाजी, अपने पुत्रों संजय और नीरज, अपनी पुत्र वधुओं प्रीति और अंजली, अपनी लाडली पोत्रियों ध्वनि और आयुषि और सुपोत्र वर्धक काचरू के प्रति जिनके समय–समय पर निजी प्रोत्साहन द्वारा मैं अपनी लेखनी आगे बढ़ाता रहा।

इनके अतिरिक्त उन सब महानुभावों, शुभचिन्तकों का आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने किसी भी रूप में मेरी सराहना की है।

लेखक

रोशन लाल काचरू

79ए, लाल नगर–छानापोरा

श्रीनगर–कश्मीर

M 9682123232

पिन: 190015

मोबाइल नं.: 7217617842

~~9906477268~~ 9999322376

दूरभाष: 0194 – 2435088

पुस्तक के बारे में

टैगोर हाल श्रीनगर में प्रधानाचार्य श्री रोशन लाल काचरू गुरू अर्जन देव दिवस पर एक वक्ता के रूप में।

प्रस्तुत पुस्तक 'मेरी यादें' अपने जीवनकाल के निज़ी अनुभवों के आधार पर पाठकगण के सम्मुख विनम्र रख रहा हूँ। मनुष्य को अपने जीवनकाल में किन–किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है; विशेषकर जब देश प्रति ओर से आतंकवाद द्वारा घिरा हुआ हो, इस पुस्तक में दर्शाने का प्रयास किया गया है।

संस्मरण हों, तो मनोकामनाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है–जैसा इस पुस्तक के कई विषयों में दर्शित है।

आशा है पाठ्कगण प्रस्तुत पुस्तक 'मेरी यादें' अपने शुमचिन्तकों सहित पढ़ने में रूचि लेंगे तथा अपने सुविचारों से लेखक को सूचित करके भविष्य के लिए प्रोत्साहित करते रहेंगे।

धन्यवाद सहित,

लेखक

रोशन लाल काचरू

लेखक के बारे में

'मेरी यादें' पुस्तक के लेखक श्री रोशन लाल काचरू हैं जिन्होंने कश्मीर वादी के उच्चस्तर विद्यालय 'टैंडेल बिस्कू स्कूल' में अपना योगदान चालीस वर्ष देकर मुख्याध्यपक पद पर निवृत्ति प्राप्त की तथा खालसा हाई स्कूल में प्रधानाचार्य के पद पर रहकर विद्यालय की प्रतिष्ठा पर चार चाँद लगाते रहे तथा भिन्न भिन्न पुरस्कारों से विद्यालय और स्वयं सम्मानित होते रहे।

अध्यापन के क्षेत्र में 45 वर्ष का योगदान देकर यह अपने युग के एक प्रतिष्ठित अध्यापक सिद्ध हुए हैं। अपनी कर्मठता, कौशल्यता, निपुणता के बल से यह न केवल शिष्यों के ही अपितु सहकारियों एवं सार्वजनिक दृष्टि में भी सदा सम्मान के पात्र रहे हैं।

सम्मानितः–
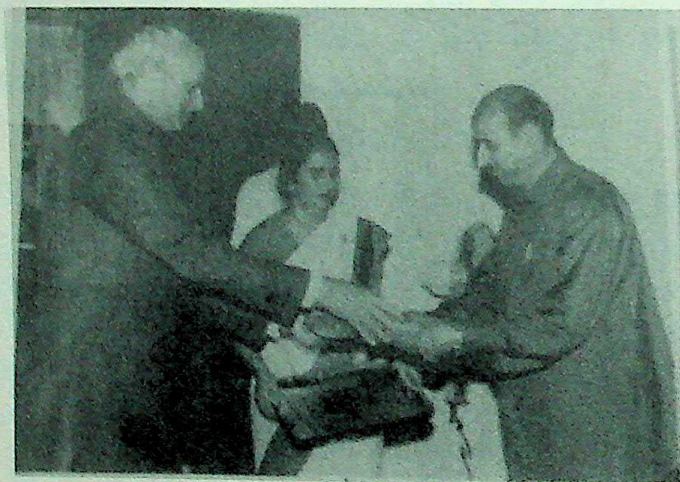
श्री रोशन लाल काचरू 'अध्यापक पुरस्कार' जम्मू–कश्मीर राज्यपाल रि.जनरल श्री के.वी. कृष्णाराव के कर कमलों सम्मानित।

1. अध्यापक पुरस्कार जम्मू कश्मीर के राज्यपाल रि. जनरल के. वी. कृष्णा राव–द्वारा वर्ष 1995.
2. मैडल्ज़ ऑफ ऑनर महासचिव द्वारा यूनेस्को कार्यालय–नई दिल्ली
3. वनजीव रत्न एवार्ड, पर्यावरण रत्न एवार्ड–1–4–2003 वर्ष द्वारा (Indian Centre for Wildlife and Environmental Studies in South East Region.)
4. जम्मू कश्मीर पंजाबी साहित्य सभा एवार्ड
5. 'दीनानाथ नादिम साहित्य सम्मान' एवार्ड हिन्दी कश्मीरी संगम.

कर कमलोंः–

1. शिक्षामंत्री श्री नयीम अखतर (28–8–2016)
2. राज्यपाल माननीय एन.एन. वोहरा (29–8–2016)

अहिन्दी भाषी कश्मीर वादी में हिन्दी लिखना इनकी निजी रूचि रही है। इनके लेख रेडियो कश्मीर श्री नगर से प्रसारित होते रहते हैं।

'शीराज़ा'–जम्मू

कोशुर समाचार–दिल्ली
सुन्दरवाणी–चन्दीगढ़
कश्मीर सन्देश–नोएडा–यू. प्र.
तथा

दैनिक समाचार पत्रों तथा अन्य पत्रिकाओं से भी सम्बन्धित हैं। वादी के कुछ धार्मिक संस्थानों विशेषकर 'श्री दुर्गा मन्दिर लालनगर श्रीनगर का नेतृत्व चालीस वर्ष से करते आ रहे हैं।

Foreword

Tyndale-Biscoe
& Mallinson
Society
P. O. Box 403,Sheikh Bagh, Srinagar Kashmir - 190001(India)
Tel : (0091) - 0194-2452533, 2476363, Fax: 0194-2484997
E-mail: education@tbmes.org, http://www.tbmes.org
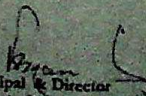
Diocese of Amritsar
Church of North India

I feel honored to write a few lines for **Master Roshan Lal Kachroo**, a brilliant teacher Hindi Language & Social Sciences in Tyndale-Biscoe & Mallinson School from 1963-2004. I have known Mr. Kachroo for the last 32 Years and found him to be a perfect example of a Guru.

During his tenure in TBMS he devoted his services to take the cause of Hindi Language to great heights. His association with UNESCO related activities in promoting the awareness of the United Nations efforts in establishing peace all around the world and specially in the post independence India have been spectacular. He constantly helped in making children realize their goals in both academics and the famous environment related activities of the Biscoe School, as a House Master as well as a Hindi & Social Sciences teacher, where he endeared himself to one and all by his pleasant deportment and soft spoken attitudes. He was loved by his pupils who continued to visit him even when he had retired from his services in Biscoe.

I wish him health and peace of mind so that he continues to guide all who come in contact with him in future.

Principal & Director
Tyndale-Biscoe & Mallinson School Society
Sheikh Bagh, Srinagar

Pervez Samuel Kaul

प्रसार भारती PRASAR BHARATI
(INDIA'S PUBLIC SERVICE BROADCASTER)
RADIO KASHMIR SRINAGAR

Sayed Humayun Qaisar
Director,
Radio Kashmir Srinagar
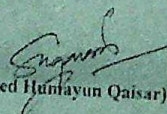
Mr. Roshan Lal Kachru, masterjee to me, is a prolific writer who lives in real life situations and depicts them brilliantly.

This collection of memoirs brings truth real life situation, in common language, and depicts richness of his thoughts and observations.

The experiences he shares can encourage a generation of youngsters and ignite in them compassion and benevolence.

(Sayed Humayun Qaisar)

Bagh-e-Mehtab, Srinagar- 190019
E-mail: humayun.qaisqr@gmail.com
Cell No. 9419578833, 9419000258

स्मृतियों के बहाने......

यादें माज़ी अज़ाब है यारब

छीन ले मुझसे हाफिज़ा मेरा

श्री रोशन लाल काचरू 'पंजाबी साहित्य पुरस्कार' प्रधान 'पंजाबी साहित्य सभा' सरदार अजीत सिंह मस्ताना द्वारा सम्मानित।

चित्र में:- ड़ॉ. रफीक मसूद्दी पूर्व. ड़ॉरेक्टर जनरल रेडियो कश्मीर तथा ड़ॉ. सरदार दलजीत सिंह जी।

खट्टी-मीठी स्मृतियों का जुलूस जब भी किसी के मन मस्तिष्क का सन्नाटा चीरता है, तो अज़ाब की स्थिति पैदा हो जाती है। कभी-कभी यह स्मृतियां एक बाढ़ का रूप धारण करती हैं और अपने भीतर बहने वाले शांति के जलप्रवाह का रूप ही बदल देती हैं; आसपास सबकुछ ढ़हा ले जाता है यह बाढ़।

रोशनलाल काचरू जैसा भावनात्मक दृढ़ता वाला व्यक्ति इस बाढ़ में बहने से जैसे–तैसे बचा लेता है खुद को और फिर इन स्मृतियों के साथ के अपने रिश्ते को सम्मान देता है, शब्दों की आरती उतारकर।

कश्मीर में ऋषि–परम्परा के ह्रास का चश्मदीद बन, विनाश, विध्वंस और वैमनस्य की मार झेलते हुए शिक्षक रोशनलाल अपनी रोशनी की कंदीलें लेकर अपने बाहर से अपने भीतर चला जाता है और स्मृतियों की गोपियों के साथ रास खेलने लग जाता है। अहिन्दी भाषी कश्मीर में हिन्दी शब्दावली का छनकता दामन थामे लेखक एक दिलचस्प संसार रच लेता है और हमें उस संसार की यात्रा पर लिये चलता है। कुछ प्रेरक–प्रसंगों के अतिरिक्त शिक्षक की भांति नसीहतों से भरपूर लेख भी स्मृति–पिटारे में कैद हैं।

मुझे खुशी है कि शिक्षक रोशनलाल ने एक कलमकार के तौर पर भी अंधेरे में कंदीलें रोशन करने का कार्य किया है। हिन्दी को माध्यम बनाकर कश्मीर में लिखना सहज नहीं है। मैं काचरू जी को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इनकी निजी स्मृतियों के बहाने पाठक को इनकी विस्तृत सोच की दुनिया का सफर करने में आनंद आयेगा।

सतीश विमल

प्रोग्रामिंग एग्जीक्यूटिव राइटर एंड ब्रॉडकास्टर

रेडियो कश्मीर श्रीनगर

अनुक्रमणिका

1

कौवी ने किया था पाप

पक्षियों की, विशेषकर कौवों की, सूर्योदय से पहले सैकड़ों की टोली में अपने नीड़ों से निकलकर वनों की ओर उड़ान करना तथा इसी रूप में वापस वनों से निकलकर सूर्यास्त से पहले की उड़ान–एक सुन्दर–मन भावक दृश्य होता है। मनुष्य एकचित अपने दिल के नेत्र खोलकर ऐसा दृश्य देखने में आनन्द लेता है। कौंवों की एकता देखिये–जब उड़ते हैं–एक साथ उड़ते हैं। उड़ते–उड़ते जब किसी डाल पर आराम लेने बैठते हैं तो कई मिलकर बैठते हैं चुगने के लिऐ जहाँ भी कुछ मिले, तो 'काव–काव, काऍ–काऍ' करके अपने साथियों को बुलाते हैं। उन्हें भी दाने चुगने, पेट भरने का आमन्त्रण देते हैं। यह नगरों का ही नही, परन्तु घने वनों का भी दृश्य है। सब स्थान ऐसा दृश्य देखने को मिलता है। बड़े चतुर बड़े निपुण होते हैं ये कौवे! मनुष्य को दृढ़–संकल्प से तथा एक जुट होकर यत्न करने का पाठ पढ़ाते हैं। पेट पालने के लिए कई मील की उड़ान करते हैं। बहुत परिश्रमी है; ये कौवे। इनसे हमें कर्मठ बनने की तथा एकता से रहने की सीख मिलती है।

पर ये भी विधाता के लिखे भाग्य की चपेट में आते हैं। ग्यारह मार्च सन् 2007 की रात को कश्मीर वादी में भारी हिमपात आरम्भ हुआ। बारह मार्च पूरे दिन होता रहा। तेरह मार्च दोपहर तक रूकने का नाम न ले। पूरी वादी में यातायात बन्द। कश्मीर प्रति ओर से बिछुड़ गया न बिजली–न पानी। न टेलीफोन–न टी.वी.। न आने–जाने के साधन। केवल

बैट्री–रेडियो–ट्रान्जिस्टर का सहारा रहा। जनश्रुति से ज्ञात हुआ कि कई मकान गिर गये हैं। आठ मनुष्यों की मौत हुई है, चिनार वृक्ष के गिरने की लपेट में आकर चार की मृत्यु हूई है। मेरे एक पड़ोसी का भी मकान गिर गया। मकान खाली था इसलिए कोई नही मरा। बाकी आस–पास के पड़ोसी बच गये। ईश्वर का धन्यवाद!

मैं अपने मकान के विषय में गम्भीर सोंचता रहा। खिड़की से निराश देखता रहा कि सहसा मेरी दृष्टि कुछ दूर एक सफेदे के वृक्ष पर पड़ी। इसके गिर्द दस–बारह कौवे चिन्तात्मक मंडरा रहे थे। सब विकल थे। पर एक की विकलता बड़ी मार्मिक थी। लगता था यह एक अबला माँ थी। हाँ! माँ ही थी। बार बार निकट के दूसरे वृक्ष से व्याकुल इस वृक्ष की डाल पर अपने बनाये नीड़ को देखने आती थी। नीड़ पर दो फुट से अधिक हिम थी। बार–बार अपने पंजों से हिम हटाने का विफल प्रयास करती। विफलता के कारण हताश चीखें मारती बिलखती थी। दुखियारी के या तो नीड़ में अण्ड़े थे या उसके बच्चे थे जिन को क्रूर हिम ने अपने तले दफनाया था। क्यों न होती मार्मिक उसकी चीत्कार? क्यों न रोती बेचारी; लुट जो गया था परिवार समेत उसके स्वपनों का संसार। उसका आशियाना लुट गया था। परिश्रम से एक सम्पन्न घर बनाया था उसने; जो अब छूट गया था। निःसन्तान–बेघर बन बैठी बेचारी कुछ ही देर में। बार बार अपनी करूणा भरी पुकार से करूणानिधि से दया की भीख माँगने इधर–उधर उड़ती। पर लगता था विधाता को भी नही भाया था उसका सुखी संसार। सब कुछ छूट गया था उसका। बिखर गये थे सपने उसके।

अन्य उपस्थित कौवे सांत्वना देने इसके गिर्द कुछ देर लगे रहे पर अपने घर–परिवार की चिन्ता में डूब एक–एक करके विदा होते गये केवल एक पक्षी निकट की डाल पर

हताश पड़ा रहा। न हिला, न डुला। केवल एकचित आशा भरे नेत्रों से सृष्टिकर्ता की ओर देखता रहा। यह था कौवी का साथी कौवा अपने फड़फड़ाये पंखों से प्रायः कौवी का धैर्य बढ़ाते, उसे सांत्वना देते, उसे अपने पास इसके समीप बैठने को कहता ताकि दम्पति इस दुख की घड़ी में एक दूसरे का सहारा बनकर; साथ–साथ दोनों, एक–दूसरे का दुख बाँटे।

मैं क्या करता! वृक्ष दूर था तथा इस पर भी वह नीड़, सबसे ऊपर सफेदे के वृक्ष की ऊँचाई पर था। मैं विफल अपने हाथ पैर मारता रहा। हताश देखता रहा–देखता रहा। केवल कौवी से मन–ही–मन सहानुभूति जताता रहा। मैं भी रोया। सोचता रहा क्या है दोष इस पक्षी का! शायद यह; क्यों इसने एक नंगी डाल पर अपना बसेरा बनाना चुना था! क्यों तिनके–तिनके जोड़कर, रात–दिन एक करके, एक नीड़ बनाया! क्यों सोचा लोगों ने प्रासाद बनाये। नगर बसाये। मैं भी एक नीड़ बनाऊँ! यही बना इस पक्षी के लिये शाप। यही था इस कौवी का पाप।।
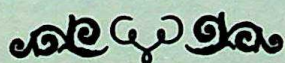
2

मिलजुल के खायें जी. पी. फण्ड

संस्मरण कई हैं अपने पास। जीवन में कई घटनायें घटी हैं। रोचक भी हैं, रसात्मक भी हैं, रोमांचक तथा मार्मिक भी हैं।

स्मरण है मेरी आयु छः वर्ष की थी। मुहल्ले में एक गंजू साहब की इकलौती पुत्री का विवाह था। विवाह धूम धाम से मनाया गया। भोज आठ दिन चलता रहा। गंजू साहब का पुत्र मेरी आयु का था। हम मित्र थे। उसी के साथ जाकर विवाह की चहल पहल उसके घर देखी थी। दुल्हन को विदा करने के समय बहुत भीड़ एकत्र हुई थी जो मैंने अपनी माता और मौसी के बीच बैठकर खिड़की से देखी। अफवाह फैली दहेज बहुत दिया गया है। यह भी याद है कि सुना सोने का पुलहोर (grass made slippers used by Kashmiris in olden days) भी बनाकर दिया गया है, पुत्री को। हाव भाव में कोई कमी किसी प्रकार नही रखी गयी थी। पुत्री प्रसन्नचित्त विदा हुई। प्रसन्न रही अपने ससुराल। पर गंजू साहब एक वर्ष के पश्चात् अस्वस्थ रहे। शरीर की हालत बिगड़ी। दम्पति की अवस्था बिगड़ी। दोनों बीमार, कमजोर तथा अत्यन्त दुखी। कारण न बताया गया पर अनुमान यही निकाला गया कि हाव–भाव में जी. पी. फण्ड की समाप्ति और ऊपर से कर्जा।

अब मेरी आयु ने दस वर्ष की छलांग मारकर मुझे सोलह तक पहुँचाया। मित्रों में वृद्धि होती गयी। और बनते

गये। यहीं वातल साहब के पुत्र के शुभ विवाह का दृश्य समक्ष रखकर, उन चार मकानों का दृश्य नेंत्रों के सामने आता है जिन्हें सात दिनों तक बिजली की दीपमालाओं से उज्ज्वलित रखा गया था। सारा मुहल्ला; मकान–सड़को समेत चमकीला। भीड़–भाड़ में कोई कमी नही। किसी को निमन्त्रण बिना नही छोड़ा गया था। लोग आते गये– निमन्त्रण का मजा उठाते गये। परस्पर मिलकर मिठास बाँटते गये। अतिथि स्त्रियों के सुगन्धित वस्त्रों से मुहल्ले की सड़के महक उठीं। अरे वातल साहब के पुत्र का विवाह था। नर नारियों की भीड़ न होती, इत्र न फैलती तो क्या होता! तीस पैन्तीस भेड़ों को अतिथियों की भेंट न चढ़ाते तो क्या खाते मेहमान हफ्ते भर! आखिरकार वातल साहब की रिश्तेदारी है। मित्राचारी है। मुहल्ला है। आस पड़ोस का भी सोचना है। आगे भी जीना है। अपने समेत बच्चों का नाम भी तो निकालना है! मैं क्यों कहूँ "बेवकूफ पकवान पकवाते हैं और अक्लमन्द आकर पकवान खाते हैं Foolish make dishes and wise eat" खाओ, पियो और जियो की कस्म खायी थी, नातेदारों ने। वधू आंई, सुन्दर थी। प्रशंसा चारों ओर फैली। वातल साहब, पत्नी समेत प्रसन्न। यही दिखाना था सबों को। दंग रखा सबों को।

"पर यह क्या! तीन मास पश्चात् वातल साहब के हाथों में हथकड़ी! क्या किया इस बेचारे ने! यह तो प्रतिष्ठित नागरिक है। देखो ना, जितना हो सका दम्पति स्वयं नाना प्रकार के भोज खिलाकर अतिथियों को प्रसन्न रखते थे। हाँ, याद है देशी विदेशी विस्की भी बहुत चली थी। तीन मास ही बीते, कौन बैरी निकला! अरे मित्र, कोई बैरी नही निकला! बैरी क्यों निकलते! अभी तो सारी दावत पची भी नही है। विस्की का नशा उतरा भी नही है। परन्तु क्या हुआ कि दो लाख रूपये जो दफ्तर से गबन किये थे उसी का भांडा फूटा है। यह अफसर भी कैसे हैं। खुद मियाँ फसीयत औरों पर

नसीयत। चलो; अब क्या किया जाये। भाग्य भी कभी करवट बदलता है। वातल साहब जेल गये। पत्नी अकेली कमरे के एक कोने में दुखी पड़ी। नवविवाहित जोड़ी को हनीमून (Honey moon) पर जाना तो अवश्य था। वधू के ताने आयु भर सुनने पड़ते। दूसरी ओर दम्पति को अपने भविष्य तथा आगामी सन्तानों के भविष्य के विषय में भी सोचना था। कितनी देर माँ के पास यहाँ टिके रहेंगें। सोच समझकर निर्णय लिया कि हनीमून केवल एक सप्ताह के लिए जायेंगे फिर पूरे पन्द्रह दिन माँ की सांत्वना के लिए घर पर रहेंगे तथा फिर वधू के भाई जी के पास अमेरिका जायेंगे। उनकी दूर दूर की पहचान का लाभ उठाकर अच्छी नौकरी ढूँढ़ेंगे। अपना निवास स्थान वहीं बनवायेंगे, यहाँ रखा ही क्या है। धूप–छाव तो आती रहती है। समयानुसार माता पिता स्वयं अपने भाग्य से समझौता करेंगे। निर्णयानुसार पुत्र ने पत्नी समेत नियत समय पर अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। माँ जी से पूरी तरह से विदाई ली। यह भी तसल्ली दी कि आप से (माँ से) हर सप्ताह फोन पर बात किया करेंगे। आप पिता के पास कभी कभी जाया करना। प्रणाम।

क्या आज यानि पाँच अगस्त 2007 की देखी घटना को संस्मरण ही कहूँ ना! मैं अपने विचारों में खोया हुआ समय की बिगड़ती अवस्था पर मन ही मन विचारता हुआ सड़क पर चल रहा था। एक वैन मेरे सामने गुज़री, मैं क्यों देखता उस ओर! मैं खोया था समय के परिवर्तन में। पीछे से दौड़ता–दौड़ता एक मित्र संजय आया। कहा– "आपको कई आवाजें दी'; पर आप ने नही सुना। "मैंने क्षमा याचना की। मुझे वैन की ओर लाया गया– देखा श्री नाज़की को। एक प्रतिष्ठित व्यक्ति; निजी कार्य से आये थे। कार्य के समाधान के लिए हमें श्री नेहरू के पास जाना पड़ा। श्री नाज़की और मैं अब नेहरू जी के घर से बाहर क्या निकले कि बीच सड़क पर

रखे एक बड़े कूड़ा दान पर नजर पड़ी। पाँच छः कुत्ते बड़े चैन से संसार भर में प्रसिद्ध कश्मीरी वाज़वान (पकवान) का मौज उड़ा रहें थे। क्या रंगीन नजारा था! क्या रंगीन चावलों के ढेर! क्या–क्या मांस से भरी–भरी हड्डियाँ! वाजवान के रचयिताओं आतिथेय (मेजबान) ने अतिथि (मेहमान) के अतिरिक्त कुत्तों की चाह का भी कितना विचार रखा था। प्रशंसा करनी पड़ेगी उसकी बुद्धि तथा उदारता पर।

नाज़की जी बोले–''काचरू साहब; किसी का जी.पी. फण्ड लुट गया है। क्या स्वादिष्ट पका है सड़क से सुगन्ध दूर तक फैली है। मैंने देखा। दोनों देखते रहे। भला कुत्ते हमारी ओर क्यों देखते! वे मग्न थे अपनी पेट की सेवा करने में। हम सोचते रहे कितने आभारी दिखते हैं ये कुत्ते, उस आतिथेय के जिसने अपनी आयु भर के जी.पी.फण्ड को अपने नातेदारों के अतिरिक्त इन कुत्तों को भी इसका भागीदार समझा। इनको भी अपने पैन्तीस वर्ष के जमा किये जी.पी.फण्ड का अधिकारी जाना।

इसे ही कहते हैं:——

''मिल जुल के खायें जी.पी.फण्ड।''
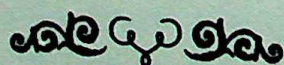
3

आह ! माँ भी हुई बलिहारी ।

कश्मीर प्राचीन काल से ही अपनी सुषमा के लिए विश्वभर में सदा प्रसिद्ध रहा है। यहाँ के हिमाच्छादित पर्वतों ने सदा यहाँ की सुन्दरता पर चार चाँद लगायें हैं और यहाँ के वनों, उपवनों, वृक्षों खेतों–खलिहानों आदि को सदा अपने स्वच्छ जल से हरियाली प्रदान करके हर प्रकार से कश्मीर की गरिमा बढ़ाई है और इसे 'भारत का मुकुट' कहलाने का गर्व प्रदान किया है।

यहाँ के उपवनों और वृक्षों की बात करें तो कश्मीर के बड़े–बड़े उद्यानों में चिनार का वृक्ष न हो; ऐसी बात हो ही नही सकती। चिनार यहाँ के बागों का आभूषण है। यह अपनी शीतलता से सबको अपने वश में करके अपनी ठंडक की ओर आकर्षित करता है। मनुष्य जलते तापमान के प्रकोप से बचने के लिए चिनार के नीचे क्या शरण ले; कि बैठते ही नींद में मस्त; खर्राटें लेने में कोई विलम्ब नही। जीव सोंचता है कि जीवन के बचे दिन इसी छाया के तले व्यतीत करूँ! चिनार अपनी फैली आकृति के कारण कई सैकड़ों पक्षियों को अपनी शाखाओं पर आवास बनाने में कोई हिचकिचाहट नही करता। शीतल स्वभाव और दानी स्वभाव का है यह चिनार का वृक्ष। 'अतिथि देवो भवः' समझकर अपने आतिथ्य कर्तव्य को खूब भलि–भांति निभाता आया है यह चिनार।

ऐसा ही एक चिनार यहाँ के श्रीनगर शहर के एक विद्यालय प्रांगण के मुख्य द्वार पर लगभग एक सौ वर्ष से

विद्यालय तथा अपनी गौरवता प्रकट करता हुआ खड़ा था। विद्यालय अपनी गरिमा में था और चिनार सीना तान कर द्वारपाल बने इसका गौरव बढ़ाता आया था। यह चिनार यहाँ के कर्मचारियों समेत हजारों बच्चों, नर नारियों को अपने यौवन की शीतल छाया से आनन्द विभोर करता आया था।

वर्ष बीतते गये। कश्मीर की स्थिति में परिवर्तन आता गया। राजनीति में परिवर्तन आता गया। शासकों के भाग्य बदलते गये। कईयों के स्वभाव में परिवर्तन आता गया। कई अपने, पराये बनते दिखते गये। कई मित्रों ने शत्रु का वेश धारण किया। कई स्वदेशी शत्रु परदेशी के वश में आकर मार्ग खो बैठे। अपना, अपना न रहा। विश्वासी, विश्वासघाती बन गया। कई पुत्र, माता–पिता, बहन भाई को छोड़कर विमुख होते गये। चेहरे बदलने लगे। अपनों की पहचान न रही। निवासी धूप–छाव दोनों की परिस्थितियों के आदि बनने लगे।

सोचा था सम्भवतः परिस्थिति में सुधार आयेगा पर 1989 ई. से स्थिति ऐसी बिगड़ी कि दिन प्रतिदिन बिगड़ती ही रही। चारों ओर विरह, वियोग, अलगाव। उथल–पुथल और आतंकवाद। चारों ओर मार–काट, गोलियाँ तथा विस्फोट। लोग इस भयावह स्थिति से अपनी जान, परिवार की इज्ज़त आबरू बचाने पलायन करने पर विवश हुए।

इस दशा को दर्शाते भला इस विद्यालय पर प्रभाव क्यों न पड़ता। चिनार के चेतन यौवन ने वृद्धावस्था में प्रवेश किया। इसकी कई शाखाओं पर जर्जरता का जाल फैल गया। जहाँ विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों तथा प्रतिष्ठित अनुभवी शिक्षकों की उपस्थिति में अभाव आया, वहीं दूसरी ओर चिनार की शाखाओं पर शरण लेने वाले पक्षियों के नीड़ो में भी कमी दर्शित हुई। उन बच्चों की खोज में यह पक्षी भी पलायन कर बैठे। दोनों ओर एक घनिष्ठ सम्बन्ध था।

पारस्परिक मित्रता थी। एक दूसरे के प्रति स्नेह था। एक दूसरे से विरह के दुख के कारण अभाव उत्पन्न हुआ था।

वादी की अस्थिरता में भयावह सन्नाटे संकट के दो दशक व्यतीत होने को आये। क्रमशः वातावरण, परिस्थिति में कुछ सुधार का अनुभव होना प्रतीत होता गया। लोग अपने–अपने व्यवसाय में जुटते गये। बाजारों की रौनक पुनः लौटने लगी। विद्यालय, कार्यालय अपने–अपने कार्यक्रम में लग गये थे। चारों ओर आत्मीयता तथा अपनी मित्रता लौट के आयी थी; पर इस विद्यालय के भाग्यः–

23 फरवरी 2008 ई. के सायं आठ बजे (दुर्भाग्य दिवस) जबकि कश्मीर के सारे विद्यालयों समेत यह विद्यालय भी 15 दिसम्बर 2007 ई. से सर्दियों के ढाई मास के अवकाश के लिये बंद पड़ा था इसके भवन में भयानक आग लग गई। भवन का ऊपरी तह (मंजिल) पूर्णतः अग्निग्रस्त हो गया। निचले स्तर का कुछ ही अंग बच पाया। इस अवसर पर उपस्थित शुभचिन्तक वर्ग द्वारा जो कर्मठता अपनी जान जोखिम में डालकर दिखाई गई वह प्रशंसनीय है। विधाता ने ऐसा दुर्भाग्य दिवस देखने को लिखा था पर साधक पुरूष कहाँ और कितनी देर चुप बैठते! कश्मीरी में एक कहावत है–**'नार पोर छु बड़ान'** अर्थ– 'अग्नि ग्रस्त ईमारत के निर्माण में बढ़ावा होता है।' ऐसा ही यहां हुआ। साधक अपनी कर्मठता से आये, दाता पुरूष यथाशक्ति अपने दान की भेंट लेकर उपस्थित हुए और तीन तह (मंजिल) वाले एक भव्य भवन के निर्माण का मानचित्र पारित हुआ। कार्य शीघ्र आरंभ हुआ। दूसरी ओर दसवीं तक की सारी कक्षाओं का पूरा कार्यक्रम केवल सत्रह दिन में पुनः आरंभ करने का प्रबन्ध किया गया। कक्षाएँ भी चलतीं गयीं साथ–साथ निर्माण कार्य भी दूसरे स्थान पर चलता गया। सब अपने–अपने कार्य में निपुणता दिखाने कमर कसे हुए थे। सारा कार्य नियमानुसार चल रहा

था पर भाग्य ने दूसरा रूप दिखाया। जहाँ निर्माण कार्य एक तह तक निष्ठापूर्वक पूरा होने को आया था वहाँ दूसरी तह (मंजिल) के निर्माण की ऊँचाई खड़ा करने में चिनार की शाखाओं ने बाधा डाली। यौवन में इसकी शाखायें काटने का कोई सोच भी नही सकता परन्तु इस पर अब बुढ़ापा छा गया था। कई शाखायें सूख गई थीं जिनका काटना अनिवार्य बन चुका था। इस कार्य हेतु संबंधित कार्यालयों के चक्कर काट–काट कर किसी प्रकार सूखी शाखायें काटने की स्वीकृति मिल गई। शाखाओं पर रस्सियाँ कस गईं तथा कटने लगीं। कुछ दिनों में काटी जाने वाली शाखाओं के तीन भाग कटकर धराशाही हो गये। ऊपर बचा चौथा भाग भी कटता गया पर क्या देखते हैं कि यहाँ एक ऊँची सूखी शाखा पर चील का बसा बसाया हुआ नीड़ है। नीड़ में चील के बच्चे भी है। दूसरी ओर एक हरी शाखा पर पत्तों में छिपा कौए के बच्चों का एक नीड़ है। शाखाओं के कटने से दोनों नीड़ों में हलचल मच गई दोनों की मातायें बिलखती चीखों से कभी शाखाओं पर उड़ती, कभी नीड़ पर उड़ कर बच्चों को अपने पंखों में छिपातीं या निकट की शाखाओं पर आकर अपने बच्चों की ओर देखकर चीखें मारतीं। वे जान गई थीं कि अब विरह का समय आया है। शीघ्र प्रलय आने वाला है। इतने में दोनों जाति के पक्षियों की एक बड़ी संख्या एकत्रित होकर नीड़ों के इर्द–गिर्द कराह भरे स्वरों से सहानुभूति दिखाते उड़ने लगी।

हम मनुष्य जाति अवाक् उनकी ऐसी दशा हतोत्साह देखते रहे। मन में केवल त्राहि–त्राहि करते रहे। सब गूँगे और निश्चेष्ट। किसी को कुछ नही सूझा। इतनी देर सूखी शाखा का वहाँ खड़ा रहने का अन्त आया। महाकाल की दृष्टि पड़ते ही शाखा तड़ाक से भवन के नींव की ओर गिरने लगी तथा इसी के साथ गिरते नीड़ से चील के दो बच्चे भी बिलखते तड़पते निर्माण स्थल पर इसी नींव के समीप गिर पड़े। माँ

बच्चों को गिरते देख उन्हें विदा करने क्या आई कि स्वयं भी बिलखती, चीखें मारती, कराह भरती उसी शाखा से टकरा कर अपने बच्चों के ऊपर पड़ कर वहीं ढ़ेर हो गई। यहाँ पर भी माँ ने बच्चों को अपने पंखों में समेटा जैसे नीड़ पर किया करती थी। माँ अपनी ममता भरी आहूति देने आई थी। दे दी। एक माँ हुई बलिहारी अपने बच्चों पर।

रोशन लाल काचरू
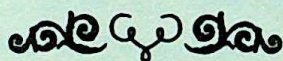
4

संकल्प में सफलता है।

मेरा एक मित्र था। उसका नाम चमन लाल था। हम दोनों पहली से दसवीं कक्षा तक एक ही विद्यालय में एक साथ पढ़ते थे तथा दोनों पड़ोसी भी थे। दोनों सामान्य परिवार के दो बालक थे। दोनों के पिता कर्मठता, निष्ठा और सत्यशीलता से जो कुछ मासिक वेतन के रूप में कमाते थे अपने सात–आठ सदस्यों का परिवार साधारणता यथाशक्ति पालते थे।

कश्मीर में 1957–58 ई. में भयानक बाढ़ आ गई। कईयों के मकान ढह गये। अनाज नष्ट हुआ। हजारों की आर्थिक दशा बिगड़ गई। चमन के पिता की मासिक आय में भी कमी आई। मकान से हाथ धोना पड़ा। दूसरों की छत्र छाया में वास करने पर बाध्य हुए। इनकी आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ा। माँ प्रायः अस्वस्थ रहने लगी। मुझे स्मरण है चमन आठवीं कक्षा में पढ़ता था उसके चार भाई और दो बहने थीं। पिता की आय में अभाव आने के कारण कभी–कभी घर में आहार की उपलब्धि कम रहती थी। अल्प आहार पर भी निर्वाह करना पड़ता था परन्तु किसी के मुख से कभी उफ न सुनी। किसी से किसी प्रकार का संकोच कभी नही सुना। सब ने ईश्वर पर अपर्ण किया था। सब में आत्म संतोष था। चमन के चाचाजी दूर किसी स्थान पर किसी कार्यालय में सेवा में लगें थें। वे प्रति मास अपना कर्तव्य मानकर इन्हें कुछ पैसे भेजा करते थे। मेरे सम्मुख चमन ने कई बार अपने चाचा के प्रति आभार प्रकट किया था। वह सर्वदा अपने पिता और चाचा की निष्ठा पर उन दोनों में एक दूसरे के प्रति स्नेह होने में,

अपना शीश झुकाता था। और उनकी चिरंजीवी के लिए ईश्वर से प्रार्थना किया करता था।

हम दोनों दसवीं कक्षा में गये। दिन–दिन व्यतीत होने लगे। सर्दियों का अवकाश दो महीनों के लिये घोषित किया गया। शीतकाल ने अपना जोर दिखाना आरंभ किया था। हम दोनों उनके निवास स्थान पर पढ़ रहे थे। हम एक कमरे में सीमित थे पर सहसा एक पंसारी दुकानदार ने कमरें में प्रवेश किया। यहाँ बैठ चमन के पिता से उधार ली गई वस्तुओं का ऋण कई मास से कुछ न चुकता करने की शिकायत करने लगे। वार्तालाप में ज्योंही दुकानदार की दृष्टि चमन पर पड़ी, जिसे वह भली भांति जानता था, उसी क्षण अपना शीश झुकाता शर्मिंदा होकर क्षमा याचना करते, बिना एक शब्द बोले कमरे से प्रस्थान कर गया। दुकानदार की दृष्टि उस फटे–पुराने महिला के फेरन पर पड़ी थी जो चमन उस समय शीत से बचने हेतु कोई और फेरन न होने के कारण पहने हुए था। एक महिला का ढीलाढाला टखनों तक लम्बा, ढीले बाजू वाला, चारों ओर लाल डोरी दामन पर सीली हुई, बाजूओं पर स्वच्छ सफेद कपड़ा जिसके ऊपर एक–दो इंच वाला सुन्दर डिजाइन चढ़ा हुआ करता था। जिसे कश्मीरी में 'नरिवार कहते है। एक सधवा हिन्दू नारी का फेरन समझा जाता था। यही आज फटा–पुराना वस्त्र बनकर चमन के परिवार की निर्धनता का प्रतीक बन पड़ा था जिसे चमन अपने शरीर पर धारण कर बैठा पुस्तकों में जुटा अपने भविष्य की ओर दृष्टि लगाये, पढ़ रहा था। दुकानदार ने सब समझ लिया और प्रस्थान कर गये। उन्हें ज्ञात था कि परिवार विनीत स्वभाव के हैं। स्वार्थी नही हैं। इस समय दुर्भाग्य ने इन्हें घेरा है। समय सुधरने पर स्वयं उधार चुकता करेंगें। मैं अवाक् देखता रहा। आज दिन तक यह घटना अपने दिल में समेटे बैठा हूँ।

मैं भी अपने भविष्य की चिंतन में खो बैठा तथा चमन का भी सोचता रहा। क्या होगा हमारा भविष्य, ईश्वर जाने! पर ईश्वर पर विश्वास था। अपने परिश्रम पर विश्वास था। ज्ञात था समय बलवान हैं। जहाँ धूप होती है वहाँ छाव का आना अवश्य होता है।

याद आ रहा चमन लाल ने मुझसे एक दिन कहा था "मित्र; मुझे ज्ञात है तथा पूरी प्रकार जानता हूँ कि तुम्हें हमारी पारिवारिक स्थिति विदित है। तुम हमारे परिवार के सदस्य जैसे ही हो, हमारा सब कुछ देखते हो, इस समय हमारा बुरा समय चल रहा है। पर यह निर्धनता नही रहेगी। मैं सोंचता हूँ कि लोग बड़े–बड़े प्रासाद जैसे भवनों में वास करते हैं बड़े–बड़े उद्यान हैं, बड़ी–बड़ी गाड़ियाँ उनके पास, "हमारे पास सिर छिपाने के लिए अपनी एक झोंपड़ी भी नही है। पर मुझे विश्वास है संकल्प में शक्ति है। सफलता है। ईश्वर के पास देर है, अंधेर नही। तुम विश्वास रखो हम अपने जीवन को अवश्य उज्ज्वल बनायेंगें। केवल दृढ़ संकल्प से परिश्रम करने की आवश्यकता है।"

परिश्रम से हम दोनों ने अच्छे अंकों से मैट्रिक पास किया। स्नातक उत्तीर्ण किया। मैंने अध्यापन का कार्य लिया। एम.ए., बी.एड आदि किया। सेवा पद पर कई पुस्कारों से सम्मानित हुआ। वरिष्ठ पदाधिकारों के नेतृत्व में रहकर सुकर्मी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। चमन एक वरिष्ठ सेक्शनल पदाधिकारी बन गया। नाम भी कमाया और मान भी। हमें एक–दूसरे को देखकर एक साँत्वना प्राप्त होती है। सन्तुष्टि मिलती है। दोनों का सम्पन्न परिवार है। बच्चे–बच्चियाँ सुशिक्षित है– आज्ञाकारी हैं। एक प्रसन्न सम्पन्न परिवार की कामना थी, दोनों को मिल गई; इससे बढ़कर क्या चाहिए था। चमन लाल के दृढ़ संकल्प से घर चमन सुशोभित हुआ। ईश्वर

का धन्यवाद। एक दूसरे को देखकर प्रोत्साहन मिलता है 'संकल्प में सफलता' की प्रसन्नता मिलती है।
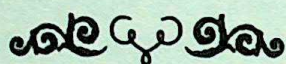
5

नम्रता में है महानता।

इस संसार में मनुष्य जन्म पाना सौभाग्य की बात है तो क्यों न इस जीवन के अल्पकाल में सुकर्मी होकर इसे सार्थक बनायें। सुशील, कर्मठ, दयावान तथा निष्ठावान का जीवन व्यतीत करके नम्रता से दूसरों के काम आयें। दूसरों की अच्छाईयों को अपनाकर अपनी बुराईयों को सदा के लिए तर्क किया जाये। निष्काम तथा नम्र भाव से दूसरों का भला करें तो कितना प्यारा लगता है। दूसरों के आशीर्वाद में ईश्वर का आशीर्वाद जानें तो हमारा मनुष्य–जन्म सफल होगा। जब हम कोई पुण्य काम करते हैं या अपना कर्तव्य भलि–भांति निभाते हैं तो मन में सांत्वना आती है। मन में आनन्द अनुभव होता है। हमें ऐसे कार्य पुनः करने की प्रेरणा मिलती है और प्रोत्साहन की जाग्रतता होती है। जो दूसरों के लिए फूल बोते हैं उन्हें अपने लिए सुगन्धित पुष्प काटने को मिलते हैं। हम अपने जीवन में नम्रता सें, सत्यशीलता से तथा अपने कर्तव्य परायणता से सिद्धि पा सकते हैं

संत कबीर जी कहते हैं:

"लघुता से प्रभुता (मान) मिले, प्रभुता (घमण्ड) से प्रभू दूर।'

चींटी शक्कर ले गई, हाथी के सिर धूर (धूल)।"

यह है नम्रता की महत्ता।

पं. मदन मोहन मालवीय जी ने अपने जीवन में अनुभव के आधार पर हमें संदेश दिया है "देश के हर द्वार पर एक दाता खड़ा है अपनी खुली थैली लिए हुए पर कमी उन हाथों की है जिनमें वह अपनी भेंट दे सके। तात्पर्य यह कि जिन हाथों में विनय हो, नम्रता हो।"

एक लोकोक्ति है:–

"बेटा बनकर सब ने खाया, बाप बनकर किसी ने नही।"

ठीक है कभी कभी कट्टरवादियों से सामना होने पर हमें अपने प्रयासों में विफलता का अनुभव होने लगता है; पर ऐसे जनों को 'लकीर का फकीर' जानकर उनसे नौ दो ग्यारह होना चाहिए। हम जानते हैं:–

"कौआ कभी कोयल नही बन सकता।"

कश्मीरी में एक कथा है:–

"पूशुक ति नै चलुकति ना।"

अर्थ:– यदि सामना न कर सके तो क्या भाग भी न सके।

दुर्जन को सत्मार्ग पर लाने का प्रयास करना बड़ा कठिन है। इस पर सूरदास जी ने उनसे दूर रहने का परार्मश देते हुए कहा है:–

"पाहन पतित–बान नहि बेधत, रीतौ करत निषंग।

सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग।।"

अर्थ:– दुर्जन पत्थर के समान है जिसे बाण नही बेध सकता भले तरकस खाली हो जाए। ऐसे व्यक्ति काले कम्बल के समान है–जिस पर दूसरा रंग नही चढ़ता।।

6

हमारी अबाबील अवश्य लौटेगी ।

याद आ रहा है अपना बचपन। अपने बचपन का वातावरण। मिल जुलकर रहना, एक दूसरे के प्रति सहनशीलता, स्नेह, श्रद्धा तथा सर्वोपरी विश्वास। ऐसे मनुष्य को मनुष्य के प्रति ही नही अपितु पशु पक्षियों के प्रति होने में भी किसी प्रकार की कमी नही दिखाई देती थी। किस प्यार से, किस प्रसन्नता तथा किस उत्सुकता से हम अपने उद्यानों में आस–पास की वाटिकाओं में, उनके वृक्षों पर बसन्त के आने पर भिन्न–भिन्न प्रकार के पक्षी देखते थे। प्रकृति ने उनके ललाट पर आवागमन का चक्कर लिखा था। बसंत आने पर हजारों कोस की उड़ान करके कश्मीरवादी की सुन्दरता का मौज उड़ाना तथा अपनी सुन्दर आकृति से यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य को सुन्दरतर बनाना इनका दैनिक कार्य था। ईश्वर ने उन्हें हमारे लिए बनाया था। इसीलिए तो पंख दिए थे उन्हें। अपनी सुरीली चहचहाहट से हमारा मन हर लेना स्वाभाविक था।

पर क्या कहूँ! किस मुख से कहूँ कि उनमें से कई अब रूठकर चले गये हैं। सच मानिये, मैंने कई रंग–बिरंगी उन छोटी–छोटी चिड़ियों के दर्शन कई वर्षों से किए ही नही। यहाँ जो भी हैं अपनी ही सदस्यता के हैं जिनमें देखता हूँ कि बुलबुल जाति की संख्या में कमी प्रदर्शित होती है।

मेरे मकान के दो कमरों में छोटी–नन्ही–प्यारी दो जोड़ी पक्षी–जाति का निवास होता था। एक में बुलबुल की

जोड़ी दूसरें में अबाबील की जोड़ी। मानों, इनका इस घर में दो कमरों में बँटवारा हो गया था। दोनों अपना अधिकार जतलाकर बड़ी उत्सुकता सें, बड़े चाव से, कमरों से लगे छत पर अपना नीड़ बनाया करती थीं। पर अब दोनों जोड़ी रूठी पड़ी हैं। उनके नीड़ खाली पड़े हैं। हाँ! बुलबुल की जोड़ी यदा–कदा हमारा हालचाल पता करने कमरे के भीतर प्रवेश करती हैं पर वे केवल कुछ मिनटों के लिये ही आती हैं। प्रवेश करके वे कमरे के चारों ओर उड़ान करती हैं। अपने नीड़ की ओर भी दृष्टि दौड़ाती हैं पर उस पर बैठती ही नही हैं, केवल हमारी ओर देखती हैं। हमें लगता है कि वे हमारा ढ़ाढ़स बँधाने आई है वे कहती हैं आप दो ही जने इस घर–परिवार में यहाँ रह रहे हो जब अबाबील तथा आप के बच्चे अन्य सदस्य समेत घर लौटेंगें तो हम भी पुनः लौटेंगें, अपना नीड़ सजाने। इन दिनों हमें भी यहाँ रहना सूना–सूना सा लग रहा है। वे कहती हैं–घर सजते हैं घर के लोगों से, सड़कें सजती हैं लोगों के चहल–पहल से, एक वाटिका सजती हैं जब भिन्न–भिन्न प्रकार के पुष्प वहाँ प्रातः समीर में सिर हिलाते अपनी सुगन्ध से वातावरण को सुगन्धित करें। मधु–मक्खी को, चंचल भंवरे को अपनी ओर आकर्षित करे। तब तक इसी आशा के साथ आप अपना ध्यान रखना। ईश्वर पर विश्वास रखना। हम अवश्य लौटेंगी। इसी आशा के बँधाते यह बुलबुल जोड़ी फिर हमारी ओर देखकर हमें उत्साहित करके एक उड़ान लेकर हमें निराश छोड़ कमरें से बाहर दूर उड़ जाती हैं।

रहा प्रश्न अबाबील जोडी का! दूर देश के निवासी हैं। स्वदेश चले गये होंगे। यहाँ की उड़ान भरते ही नहीं। दो दशक वर्षों से हम अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनकी राह ताक रहे हैं जोड़ी में से एक भी नही लौटता है। क्या वे सोंचती हैं कि जब मनुष्यों के अपने बच्चों ने पलायन किया तो हम क्यों न

करतीं! क्या उन्हें उनके सामने उजड़े पड़े घर याद आते हैं जिनको अपने ही स्वामियों ने इधर–उधर से ऋण ले लेकर, भूख प्यास सहन करके, दिन–रात कठिन परिश्रम करके बनाया था–पर त्यागना पड़ा। उन अबाबील से कहो कि यह ईश्वर की क्रीड़ा है। कश्मीर का भाग्य था। सारा भारत इस चुंगल में फंस गया। किन्तु अब स्थिति में परिवर्तन आया है। लूटे, उज़ड़े और जले घर पुनः घर बन गये हैं। तुम ऐसा न सोचो कि पुराने लकड़ी के घरों ने शीशे के महल्लों का रूप लिया है। ग्लास–हाऊस बन गये हैं, हमें कौन पहचानेगा! मैं कहता हूँ– यह अपरिचित जन–जाति शीघ्र ही आपसे परिचित होकर, दिल खोलकर आपका स्वागत करेगी। आपको खुले दिल से आतिथ्य भाव प्रदान करेंगे। केवल आपके आने में विलम्ब है।

हमारी अबाबील से कोई जाकर कहे–उनका कमरा उनके बिना सूना लगता है। क्यों वे नन्हीं जान यहां की परिस्थिति से इतना डर गयी हैं! क्या उन्हें गत भयावह दिन सर्वदा याद आते हैं? उन्हें कोई क्यों नही बोलता; वह भाग दौड़–वह उथल–पुथल–वह गोलियों द्वारा उत्पन्न सनसनी–वह मॉर्टर गोलों की गरज–अब नही रही, एक विराम आया है। ईश्वर करे अब इन पर सदा के लिये विराम चिह्न लगे।

समय बलवान है। एक स्थान नही टिकता। क्यों मन में भय समाये बैठे हो। लौटो अपने घर। चूम लो अपनी भूमि। हमारी अबाबील से बोलो तुम्हारी मित्र चिड़ियाँ, मैना, कोकिला यहाँ हैं। तुम्हें दिन रात कभी बिजली के स्तम्भों पर, कभी इनकी तारों पर बैठ कर सत्त एकटकी लगाकर तुम्हारे कमरे की ओर देखती तुम्हारी प्रतीक्षा में हैं। उनके लिये तो दर्शन दो। क्या तुम्हें उनकी याद कभी नही सताती है! क्या सब कुछ भूल गये जो अब–सारा कुछ त्याग दिया है अब! देखो; सामने वृक्ष का कठ फोड़वा भी लौटा है। हम कई बार तुम्हें स्वपनों में चहचहाते देखते है। हमारी ओर से कहो–हम दम्पति

ने अपना मकान नहीं बेचा है। तुम्हारी प्रतीक्षा में हैं। अपनी हथेलियों में तुम्हारा दाना लेकर प्रतीक्षा कर रहे हैं। पानी का प्याला वहीं है। हमने कुछ हटाया नही है। हमें पता है; विश्वास है, हमारी अबाबील कभी न कभी अवश्य लौटेगी। वह सब जाति के पलायनकर्ताओं समेत लौटेगी। कभी–न–कभी उनको यहाँ के हिमाच्छादित पर्वत, निर्मल नदी नाले–पुष्प भरे बसन्त के बगीचे–खेती खलिहान, चखे हुए फलों की याद सतायेगी– वे श्रृंखला तोड़ दौड़ते आयेंगे।

उन्हें आना हैः–यहाँ का भाई चारा जगाने, यहाँ का प्रेम भाव जगाने–स्वयं जागने, यहाँ की कश्मीरियत जगाने–पुनः अपना घर बसाने–वादी की वाटिका सजाने–यहाँ का प्रदूषण मिटाने–यहाँ की विषमताएँ हटाने–अपने सौजन्य से–एक नया इतिहास लिखने।

रोशन लाल काचरू
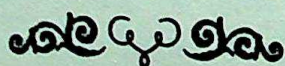
7

तीन दिन काम, चार दिन आराम ।

उमर और आमिर क्रमशः दसवीं और आठवीं श्रेणी में पढ़ते थे। दोनों भाई थे तथा एक ही विद्यालय में विद्याग्रहण करते थे। उमर सीधा साधा बालक था पर आमिर सर्वथा उमर के विपरीत था। आमिर में बचपन की सारी शैतानियाँ भरी हुई थी!। उनकी मां तंग आकर प्रायः शिकायत करने पाठशाला आया करती थी। वह आमिर के भविष्य की चिन्ता में सर्वदा रहती तथा उसकी शिकायत करने अध्यापकों से मिला करती। सम्भवतः किसी ने उसे मेरा नाम बताकर मुझसे संपर्क करने का परामर्श दिया था। एक दिन वह मेरे पास आई तथा सारी राम कहानी सुनाई। वार्तालाप से ज्ञात हुआ कि महिला शिक्षित, सभ्य तथा नम्र स्वभाव की है। किसी कार्यालय में सेवा नियुक्त है। पर बेचारी पुत्र–दर्द की मारी है। अपना कर्तव्य समझकर मैंने उस महिला 'हफीज़ा जी' का ढ़ाढ़स बँधाया और लगा आमिर के सुधार की चिन्ता में।

एक अनुभवी अध्यापक होने पर तथा हफीज़ा जी की सहायता से मैंने अपने अनुभव के कुछ फार्मुला चलाये। एक दो मास पश्चात आमिर में, उसके हर क्षेत्र में एक अच्छा परिवर्तन देखने को मिला। मैंने सुना था कि आमिर के पिता जी कश्मीर वादी में चल रहे उग्रवाद के कारण यहाँ से बाहर दूसरे प्रदेश में चार वर्ष से रह रहे थे। मैं इसलिये जान गया

था कि यही कारण आमिर के बिगड़ते स्वभाव या बिगड़ते विकास का हो सकता है इसलिए एक पिता का स्नेह उसके प्रति दिखाकर उसके स्वभाव और विकास में परिवर्तन लाने में मुझे सफलता मिल गयी। परिवार में भी परिवर्तन दिखाई दे रहा था।

इसके फलस्वरूप, ईश्वर का करना दोनों भाई पढ़ाई समेत हर क्षेत्र में रूचि लेने लगे। आमिर 85 प्रतिशत से दसवीं कक्षा में उत्तीर्ण हो गया। उसके लिए दूसरे विद्यालय के ग्यारहवीं कक्षा के लिये प्रवेश लेना पड़ा। इस कारण इस परिवार का मुझसे संपर्क कम हुआ तथा कुछ सप्ताह पश्चात सम्बन्ध मानो–छूट ही गया।

ईश्वर का करना, तीन वर्ष पश्चात क्या देखता हूँ कि एक सायं एक स्त्री और एक पुरूष मेरे मकान के द्वार पर दस्तक दे रहे हैं। मैंने द्वार खोला तो देखता हूँ हफीज़ा ज़ी पति समेत थीं। हम दोनों आश्चर्य में पड़ गये। हफीज़ा ज़ी को मेरे मकान का बिल्कुल पता नही था। मेरे द्वार पर दस्तक देकर फिर हम दो का मिलन होना एक आश्चर्य की बात थी। अपने पति को मेरे विषय में पहले अवगत करा चुकी थी अतः वे बड़ी कृतज्ञता से मुझसे मिले। बहुत आभार प्रकट किया। मैंने यथा सम्भव अतिथियों का आदर सत्कार किया।

वे मेरे पड़ोस में एक मकान को खरीदने आये थे और इस उपरान्त कुछ मास में हम एक दूसरे के पड़ोसी बन गयें। हमारा एक दूसरे के घर आना जाना आरंभ हुआ। घनिष्ठता में भी वृद्धि होने लगी। बातचीत में मैंने एक दिन उनसे (फारूक साहब) इतने वर्ष कश्मीर छोड़ने का कारण पूछा इस पर भी जब उनके बच्चे बड़ी श्रेणियों में पढ़ रहे थे। उत्तर यही मिला– "यहां क्या रखा है मास्टर जी। यहाँ उग्रवाद है। लोग बेकार दिन व्यतीत करते हैं। देखिये ना बाहर के शहरों में

लोग प्रातः सायं सौ–सौ मील दूर जाकर अपना अथवा अपनी कम्पनी का टारगेट पूरा करने एकजुट लगे रहते हैं। सड़क की रेड़ियों पर दो फुलके खाकर फिर कम्पनी में अपने कार्य में लग जाते हैं। वहाँ न प्रातः न सायं, केवल कार्य ही कार्य। सब व्यस्त अपने–अपने कार्य में।''

मेरा और फारूक साहब का मिलन प्रायः उनके घर होने लगा। मैं उनको प्रायः दुकानों पर या बाजार में दिन के समय देखा करता था तो कुछ मास पश्चात मैंने फारूक साहब से पूछा। ''क्या आपने अपना कार्यालय पुनः ज्वॉईन किया? उत्तर मिला–''जी हाँ, मैंने दफ्तर कब का ज्वॉईन किया अपने पद पर नियुक्त भी हुआ हूँ प्रमोशन एक बाकी पड़ी थी वह भी ले ली। नये वेतन आयोग की सिफारिश पर बाकी पड़ा सारा वेतन प्राप्त किया।''

''गुड–गुड, वेरी गुड! बहुत अच्छा हुआ– पर (थोड़े विराम के पश्चात)– पर मैं तो आपको प्रायः यही दुकानों–बाजारों में ही देखता हूँ।'' मैं बोल उठा।

उत्तर मिला– ''जी, हाँ; क्या करें।''

मैंने बोला– ''अब क्या वेतन है, आपका।

उत्तर मिला– ''यहीं कुल जोड़कर बीस हजार मासिक हैं, जी। स्टेट प्रशासन क्या देती है! मास्टर जी।

मैंने बोला–''चलो ठीक हुआ। चार वर्ष वादी से दूर भी रहे। उग्रवाद भी कम ही देखा, सहा। अपना पद वेतन सहित पुनः प्राप्त किया। उस पर भी नये कमीशन का लाभ भी मिला। बहुत अच्छा हुआ। सरकारी नौकरी में ऊपर वाले अपने होने चाहिये। कृपालु तो रहते ही हैं। फारूक साहब ने उत्तर दिया–'' जी हाँ! जिसके साले, बहनोई, मामा, भांजें, चाचा, भतीजे इधर–उधर अच्छे पदों पर नियुक्त हों, उसे

कहीं–न–कहीं, किसी न किसी प्रकार लाभ तो मिलता ही है। फिर रिश्तेदारी किस काम की? उनको कभी–न–कभी किसी न किसी दिन हमसे भी तो आँखे मिलानी ही हैं ना जी।''

मैं फिर बोल उठा– ''पर मैं तो प्रायः आपको बाज़ार में ही दुकानों आदि पर देखा हूँ। क्या आप नाईट ड्यूटी जाते हो?''

उत्तर मिला–''नही मास्टर जी! मैं सप्ताह में तीन दिन ड्यूटी पर जाता हूँ एक सोमवार, दूसरा बुधवार, तीसरा शनिवार।'' अपना वार्तालाप चालू रखकर फारूक साहब पुनः बोले ''देखो जी, मास्टर जी, अपना तो सीधा हिसाब है सोमवार की तो ड्यूटी दी। मंगलवार तो थकावट होती है। बुध को फिर ड्यूटी दी। वीरवार को शुक्रवार के इबादत की तैयारी आदि, शुक्रवार तो इबादत करनी। शनिवार पुनः ड्यूटी पर जाता हूँ। रविवार तो अंग्रेजों के काल से माता–पिता का दिन माना जाता है। अवकाश का दिन संसार भर में मनाया जाता है तो हम पीछे क्यों रहें, क्या करें। सब कुछ देखना पड़ता है। यह भी न करें तो घर गृहस्थी कैसे चलेगी।''

मैंने बोला–''क्या ऐसा आपके दफ्तर में चलता है। आखिर आपका कार्यालय तो शहर में है और आप बीस हजार मासिक के अच्छे पद पर हैं बाकी कर्मचारी तो देखते होंगे। क्या वे अंगुली नही उठाते हैं ? क्या वहां कोई बड़ा अफसर कभी आने का गवारा नही करता ?''

फारूक साहब बोले–''जी नही, मास्टर जी। उनको पता है सब। ऐसा चलता रहता है। ड्यूटी तो देते है ना।''

मैंने बोला–''जी हाँ। सबका पूरा पूरा ध्यान रखकर ड्यूटी तो देते हो। सरकार का तथा अपना और अपने वेतन के पूरे शुभचिंतक हो–तीन दिन काम करते हो। अपने ईश्वर का पक्का भक्त बनकर एक दिवस पहले ही उसकी प्रार्थना

की तैयारी में लगे रहते हो। प्रार्थना के दिन तो ईश्वर से ही लगे रहते हो। उनके चरण धो–धो कर चरणामृत पीते रहते हो। जगत कल्याण के लिए उपासना में लगे रहते हैं आप पूरा दिन! बाकी के दो दिन घर–गृहस्थी, नातेदारी तथा अपने शरीर की देखभाल में तो लगते ही हैं। इसमें किसी को कोई अचम्भा नही होना चाहिये।"

फारूक साहब–"चाय पीजिये मास्टर जी।" इसी बीच हफीज़ा जी पधारी। उन्होंने कहा कि मेरी चाय ठंडी हो रही है। चाय पीनी चाहिये दोनों को। लगता है किसी विशेष विचार पर बात हो रही है। यहीं मुझे सूचित किया गया कि दोनों भाईयों का प्रवेश पूणे और कोलकता में एम.बी.ए. तथा बी.एम.एस. कोर्स के लिये कराया गया है। सच जानिये मास्टर जी दोनों भाई जाते समय आपको बहुत याद करते थे। यह सब आपका ही आशीर्वाद है।

मैंने दोनों की ओर देखकर कहा– "जी हां, मैं चाय पीता हूँ। प्रसन्नता की सूचना सुनाई है यह जानकर तो और भी चाय लूँगा। मन प्रसन्न हुआ दोनों बच्चों का प्रवेश हो गया। कुछ डोनेशन भी देना पड़ा होगा।

दोनों ने उत्तर दिया– "उसके बिना क्या सम्भव हो सकता है।" मैंने कहा– "चलो ठीक हुआ।" माता–पिता का एक कर्तव्य तो निभाया आपने। आपका बोझ हल्का हो गया। यह भी एक बड़ी चिन्ता थी आपको। ईश्वर को धन्यवाद है कि दोनों पति–पत्नी नौकरी में लगे हो वरना क्या बनता आपका। आजकल तो महंगाई है। क्या करें! दफ्तर में भी बहुत काम करना पड़ता है। सर्वोपरी अफसरों को भी प्रसन्न रखना पड़ता है तभी तो आज की नौकरी चलती है। बच्चे ठिकाने लग गये वह बहुत सौभाग्य की बात है। यहाँ का यह मकान खरीदकर बड़ा अच्छा काम किया। गाँव का कुछ नही बेचना। मेवा बाग,

किचन गार्डन, बाहर का छोटा मकान आदि ऐसे ही रहने देना। बेचना कुछ नही। यह मेरा परामर्श है।

हफीजा जी–"आपसे क्या छिपायें मास्टर जी। यह मकान तो यूँ ही समझो ट्रान्जिट कैम्प हमने रखा है। इससे एक बड़ा मकान दस वर्ष पूर्व जम्मू नरवाल में बनाया है अब दिल्ली में एक फ्लैट बुक किया है। क्या पता है कि बच्चों का भविष्य क्या होगा। कहाँ पर इनका जलवायु होगा। जहाँ भी जायें, अपनी छाया होनी चाहिए। इसी चिन्ता में हम दम्पति लगे रहते हैं। यदि आपके द्वारा कहीं और भी कुछ प्राप्त हो सके तो कृपया हमें अवश्य सूचित करना। सम्पति तो होनी चाहिये।"

मैंने कहा– "जी हाँ, मैं अवश्य सूचित करूँगा मास्टर जी का काम ही परोपकार का है। आप तो अपने हुए। मैं अपना कर्तव्य समझकर स्वयं आपको सूचित करूँगा। आपके टेलीफोन नं., मोबाइल नं. सब मेरे पास हैं। आप चिन्ता छोड़ो, फारूक साहिब। अपनी तीन दिन की ड्यूटी पर तन–मन से डटे रहो। अपने अफसरों (आकाओं) को प्रसन्न रखना तो आपसे ही सीखे कोई। आप तो निपुण हैं। कर्मठ हैं। ड्यूटी देकर ही फ्लैट या मनवांछित मकान का व्यय निकल सकना सब सम्भव हो सकता है।" विश्वास रखो। अच्छा अब विदा लेता हूँ कभी हमारी कुटिया में भी हमारा हाल पूछने आया करें। दोनों पति–पत्नी से आज्ञा माँगता हूँ। ईश्वर रक्षा करे और सद्‌बुद्धि दे। धन्यवाद।"

रोशन लाल काचरू
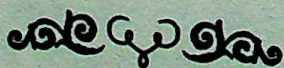
8

आत्म बुद्धि प्रकाशाय

आत्म बुद्धि प्रकाशाय, पर बुद्धि विनाशाय, त्रिया (स्त्री) बुद्धि प्रलय गतं। "यह शताब्दियों से चलती आ रही एक जन–श्रुति है। आजकल के युग में कथित जन–श्रुति कहां तक सही ठहरती हैं, इस विवाद में न पड़कर आज उपरोक्त शीर्षक पर ही कुछ विचार करना उचित समझा गया है। दूसरों की बुद्धि या मत की ओर जाने से पहले उचित है, कि ईश्वर ने जो हमें ठीक–गलत, उचित–अनुचित आदि पहचानने के लिए आत्मबुद्धि प्रदान की है उसी का सार्थक रूप से प्रयोग क्यों न करें। आत्मबुद्धि का सद्उपयोग या दुरूपयोग करना मनुष्य की प्रवृति पर निर्भर है।

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक यदि कहीं भी हम दृष्टि दौड़ाएं तो ज्ञात होता है कि मनुष्य व्यक्तिगत रूप से सदैव एक प्रगतिशील प्राणी रहा है। उसकी बुद्धि ने नए–नए आविष्कार करके संसार को विकास की ओर ले लिया है। उसने अपने आपको उस प्राचीनतम युग की गुफा से निकालकर अपनी जीवन–कला को भिन्न–भिन्न रूपों में रंगकर आज के युग के उस स्थान पर खड़ा कर दिया है जहाँ सब कुछ आश्चर्यजनक दिखाई देता है। वह आत्म–बुद्धि द्वारा आविष्कृत नवीनतम उपकरणों से असंभव को संभव का रूप शताब्दियों से देता आ रहा है। प्राचीनतम युग के गुफा–सीमित निवासी ने हमें "अग्नि और पहिया" का आविष्कार जो हम तक पहुँचाया क्या हम उसका, ऋण चुका सकते हैं? इन्ही पर संसार की प्रगति निर्भर है। आज के वैज्ञानिक युग तक लाकर

जो आविष्कार तथा उपलब्धियां मनुष्य ने संसार के सम्मुख रखी वे सब आत्म बुद्धि की देन है। जिसकी हम जितनी प्रशंसा कर सके कम है। यह सब संभव हुआ जब मनुष्य ने अपनी बुद्धि पर यथा शक्ति बल देकर उसे पहचाना। उसे सन्मार्ग पर रखकर विचलित न होने दिया। हर काम में सोचने की शक्ति ईश्वर ने प्रदान की है, इसे जागृत करना हमारा काम है। जो मनुष्य आलस्य का जीवन व्यतीत करता है उसके पास जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है वह "आया राम गया राम तथा आया लोहे का गया घास का" जीवन व्यतीत करता है। ऐसे मनुष्य अपने लिए, अपने कटुम्ब के लिए ही नही अपितु सारे देश के लिए बोझ बन जाते हैं। इसके विपरीत मनुष्य जो अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करके जीवन का एक–एक क्षण उस लक्ष्य को पूर्ण स्वरूप देने की चेष्टा में बिताता हैं, कितना उत्तम और महान है।

महात्मा गाँधी जी को दक्षिण अफ्रीका में अपने पास रेलगाड़ी की प्रथम श्रेणी के लिए टिकट होते हुए भी रेलगाड़ी से नीचे उतारा गया। उन्हें यहाँ अंग्रेजों द्वारा दुर्व्यवहार का शिकार बनना पड़ा परंतु उसी समय उन्होंने भारत को अंग्रजों के हथकंडे से छुड़ाना अपने जीवन का सर्वप्रमुख लक्ष्य बनाया। अपनी बुद्धिमता से अपनी सच्चाई से अहिंसा को सर्वोपरी लक्ष्य मानकर भिन्न–भिन्न प्रकार के आंदोलनों को स्वरूप देकर उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचाकर, अपने आप की तनिक परवाह न करते हुए हज़ारों प्रकार के कष्ट झेलकर, गाँधी जी ने हमें सदियों की दासता से स्वतंत्रता दिलाई। एक स्वपन को साकार बनाकर दिखाया। सुभाष, नेहरू, पटेल आदि नेताओं ने आत्म बुद्धि के बल से ही जन जर्नादन को जागृत करके सच्चा मार्ग दिखाया।

मनुष्य अकेले में बैठकर एकाग्रचित्त निष्ठा और कर्मठता का पाठ धारण करता है और अपने धैर्य से, आत्म

बुद्धि से, दूसरों को अपने वश में कर सकता है। निर्लोभी को अपने लक्ष्य की सिद्धि में अवश्य सफलता मिलती है।

कई बच्चें अपने जीवन के अल्पकाल में ही बुरी संगती में पड़कर, दूसरों के वश मे आ जाते हैं और अपने जीवन का लक्ष्य न बनाकर इसे यों ही गंवा कर निरर्थक बना डालते हैं परंतु कई नेहरू, टैगोर, जाकिर हुसैन, बाबा अम्बेडकर और राज़ेश शर्मा बन जाते हैं। सब आत्मबुद्धि पर निर्भर है। संयम रखना जीवन का अभिन्न अंग बनाना चाहिए। संयम से दूसरों के चित जीते जा सकते हैं। जिनकी कच्ची बुद्धि होती है शीघ्र ही दूसरों की आधीनता में आकर उनके दुष्कर्मों का शिकार बन जाते हैं, और कच्चे बर्तन की तरह टूट जाते हैं तथा अपने जीवन के भविष्य का सर्वनाश कर बैठते हैं।

संसार में यदि उच्च कोटि के दृष्टिकोण वाले नेता उत्पन्न न होते तो उनके देशवासियों के सामने उनके स्वतंत्र देश का मानचित्र न होता। पराधीनता पर स्वाधीनता का विजयी होना आत्मबुद्धि के बल के प्रयोग से ही संभव है। आत्मबुद्धि का प्रकाश सन्मार्ग दर्शाता है तथा अपने गौरव की रक्षा के लिए तनिक भी विचलित न होने वाला वीर बनाता है, जो भयंकर तुफानों से भी शक्तिशाली होता है। इसके विपरीत निस्तेज जीवन बुझे हुए कोयले समान होता है।

9

अच्छा क्या है और कौन है ?

1. जिसके हाथ, पैर और मन संयम में रहते हैं वह विद्वान अच्छा है।
2. जो किसी का दिया हुआ दान नही लेता, प्रारब्ध वश जो कुछ मिल जाय उसी से संतुष्ट रहता है। वह अच्छा है।
3. जो अहंकार से दूर, क्रोधहीन, सत्यवादी, दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रत का पालन वाला हो, वह अच्छा है।
4. जो इस दुःखद, अंधकार और भयंकर रूपी संसार में शान्ति और प्रकाश की किरण लाये, वह अच्छा है।
5. जो विषैले क्रूर मन–मस्तिष्क में अमृत की धारा फैलाकर शान्त कर दे और उसी से शान्ति का प्रचार करा सके, वह अच्छा है।
6. जो दूसरों का दोष देखता है।, उन दोषों से आकृष्ट न हो स्वयं दोषमय न बन जाता है और अदोषदर्शी बनकर रह जाता है वह अच्छा है।

10

दुल्हन मायके भी पहुंची, दुल्हा सोता ही रहा

प्रायः कई बार नई बैठकों में लोगों को पुराने जमाने की प्रशंसा करते हुए सुना जाता है। ऐसे शीर्षक प्रायः सेवानिवृत लोग अपनी–अपनी लिंग–जाति की टोली में बैठकर उठाते रहते है। कई बार घर के मुख्य सदस्य रविवार की छुट्टी के दिवस आराम से बाकी सदस्यों के साथ बैठकर ऐसे शीर्षक 'पुराना जमाना कितना अच्छा था', पर बोलने में अपनी रूचि लेते हैं। सार्वजनिक पार्कों की सारी टोलियों में, चाहे वे पुरूषों की हों या चाहे स्त्रियों की हों, ऐसी चर्चा होती ही रहती है। कैसा अच्छा ज़माना था। कितना सस्ता ज़माना था। घर का एक सदस्य कमाता था और बाकी परिवार, उसी पर पलता था, ऊपर से सारी रस्में भी पालते थे। आपस में कितना स्नहे, प्रेम तथा आदर था। घरों में दादा, दादी, चाचा, चाची, चचेरे तथा प्रायः फुफेरे–ममरे भाई–बहन कितने उल्लास और स्नेह से रहते थे। किसी एक को कांटा चुभता तो बाकी सब निकालने के लिए तत्पर रहते। निजी आवश्यकताएं भी कम होती थी। पड़ोसियों से परस्पर प्रेम, सहानुभूति। आज कहां देखने को मिलती हैं यह। पड़ोसियों का वह प्यार याद आता हैं। एक घर की पकाई सब्जी तीन–चार घरों में बंट जाती थी। किसी विशेष उत्सव के दिन पकाई गई सब्जी दो तीन घरों के चौकों मे विराजित होती और बुजुर्ग या विशेषकर उन घरों की स्त्रियों का भोग बनने का आदर पाती। सासू जी अपनी–अपनी बहुओं

का गीत गान घंटों भर पड़ोसन के साथ करने कभी न थकती। दिन अपने होते, समय अपना होता। सासू जी को किसी की परवाह या चिंता न होती। आखिर घर की मालकिन जो ठहरी, पूरे घर पर अधिकार होता उनका। बाकी सदस्य, चाहे उनमें सासू जी के पति ही क्यों न होते, किस खेती की मूली होने का अधिकार जताते?

ऐसे ही एक रविवार के दिन हम दो मित्रों को पत्नियों समेत एक मित्र के घर खाने के न्यौते पर जाने का शुभ अवसर मिला। बेटे का जन्मदिन था इसलिए कमरे में हमारे अतिरिक्त पन्द्रह–सोलह नर नारी अतिथि और भी थे। बस वहीं पुरानी राग छिड़ गई।

कैसा पुरना जमाना था एक–दूसरे के प्रति स्नेह और प्रेम और सबसे उपर हया (आदर) और शर्म (इन दो शब्दों के उच्चारण में जरा जोर दिया गया ताकि सामने बैठे छोटे, बहु, बेटियाँ, बेटे भी सुने)।

मजाल था कि पति–पत्नी बड़ों के सामने एक दूसरे की ओर देखते– बात करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। कहां से ऐसा धैर्य लाते। यदि कोई दम्पति किसी छोटे के सामने परस्पर बात करते तो उसका भी नगारा पिटता। इसी चर्चा के बीच मेरे साथ आये मित्र ने अपनी ठानी– जोर देकर कहने लगे ताकि सब आकर्षित हों।

"सुनो जी; यह था पुत्र–पुत्रियां जन्माये विवाहित लोगों का हाल। मैं सुनाता हूँ। अपनी राम कहानी– जब हमारी शादी हुई एक सप्ताह यह धर्म पत्नी जी जो मेरे बगल में बैठी है। ससुराल में रही। नवविवाहित का प्यार, आकर्षण; आप समझ सकते है कैसा होता है– चलता रहा एक सप्ताह। पर सब कुछ चुपके–चुपके। छिपते–छिपते दिन में समय

पाकर। आंखों–आंखों में दूर–दूर से दूसरों से आंखें चुरातें हया (आदर) और शर्म की दीवार के बीच।

आठवे दिन इनको मायके जाना था। पहले सात दिनों की तरह नियमानुसार इनको एक कमरे में दुल्हन के लिए सजाये गये सेज पर विराजमान होने का आदेश मिला। आने वाले शुभचिंतकों के सामने अपने आपको मिले हुए दहेज समेत प्रदर्शित करने का नियम निभाना था। क्या करती बेचारी नई वधू थी। घर के संस्कारों का आदर करना इसके जिम्मे था।

मान–मर्यादा का पूरा ध्यान रखना था। तो श्रीमान जी, यह मर्यादा पालती गई। जब दोपहर का भोजन सबों ने किया, मैं महाशय समय ताक कर दूसरे कमरे में जाकर बैठ गया। मुझे नींद आई आँख इतनी लगी की खुलने का नाम ही नहीं लिया। इसी बीच इनके मायके से कुछ लोग आये थे। भोजन आदि करके अपनी बेटी को यानी मेरी इस धर्मपत्नी को मायके ले भी गये और मुझे पता ही नहीं लगा। न किसी महाशय की हिम्मत थी कमरे में बैठे बड़ों के सामने मुझे जगाने की। वहां बुजुर्ग बैठे थे, लेकिन कौन धैर्य करता मुझे इशारा करने का। बाद में, हमारा मिलन दो मास बीत कर हुआ। यह था। श्रीमान; हया शर्म मान–आदर तथा घर के संस्कार। दूसरे बैठे अतिथियों ने खूब सहानुभूति जताई जिनमें एक तो कह ही उठे, यानी इसी को कहेंगे कि दुल्हन मायके भी पहुंची, दुल्हा सोता रहा।

मैं कहां चुप रहता ? मैं लगा मोबाइल कम्पनियों को दोष देने। उन्हें कोसने। काश उन दिनों मोबाइल फोन का अविष्कार हुआ होता– हमारी भाभी जी हमारे कुम्भकर्ण मित्र को कम से कम एक दो मिस काल देकर ही जगाती। इशारों

से ही विदाई लेती। बाप रे भाभी जी! सॉरी। कैसे कहें दुल्हन मायके भी पहुंची दुल्हा सोता ही रहा। कमरे में ज़ोर की हंसी खिल्ली।
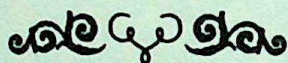
11

मित्र पक्षियों के नाम-एक पत्र

यह पत्र कश्मीर वादी में अपने मकान के छत पर अनाज के दाने चुगने वाले उन प्रिय मित्र पक्षियों के नाम है:-

ग्रेटर कैलाश

नई दिल्ली

तिथिः-तीन फरवरी 2010

प्रिय मित्र पक्षियो,

न जाने गत एक सप्ताह से मुझे तुम्हारी याद क्यों सताने लगी है। विश्वास करें; इस समय तीन फरवरी 2010 को प्रातः के चार बजे जब अभी मेरे कानों ने दिल्ली के किसी मन्दिर के शंख की नाद या किसी घण्टी की ध्वनि नही सुनी या किसी मस्जिद की अज़ान ही नही सुनी; मैं बन्द कमरे में रात भर से अपने शयनयान पर सीमित तुम्हारी याद में डूबा हूँ। अब सोचा, क्यों न इस पत्र के द्वारा ही तुमसे मिलन हो!

जानता हूँ, वहां कश्मीर में दिसम्बर मास से बन्द पड़े उस खिड़की को जिससे हम दम्पति तुमको प्रातः-प्रातः दाना डालते थे, देखकर चकित होंगे कि यह खिड़की अभी भी खुलती क्यों नही। पर तुममें से अधिक यह जानते हैं कि यह

खिड़की प्रतिवर्ष दिसम्बर मास से मार्च तक बन्द पड़ी रहती है। कारण यह कि हम दोनों ने अपने आपको कर्तव्य के बन्धन में बांधकर बाँटा है। वर्ष के आठ मास या कभी नव मास आपके पास रहते हैं शेष अपने बच्चों को मिलने दिल्ली आते हैं। तुम से दूर रहकर हमें तुम्हारी याद बहुत सताती है। इसका जिक्र हम प्रायः यहाँ बैठकर करते रहते हैं। प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी मेरी पत्नी ने यहाँ की ओर प्रस्थान करने के एक दिन पहले तुम्हारे लिए चावल की एक भरी थाली बरामदे पर रखी थी और मैंने स्वयं पानी भरी एक बड़ी कटोरी रखी है। दोनों सुरक्षित स्थान पर रखी हैं ताकि कोई बिल्ली आकर तुमको न सताये।

क्या तुमको याद है वह दिन जब बिल्ली ने छत पर चढ़कर आपको सताया था? मैंने देखते ही तुरन्त उसे भगाया तथा वहाँ थोड़ा खुले पड़े टीन की चादर को एक दम स्वयं बन्द किया। तुम्हारी सुरक्षा हमारी सुरक्षा है। और तुम्हारी सुरक्षा का ध्यान रखना हम दोनों पति–पत्नी का कर्तव्य तथा परम धर्म है।

प्रिय पक्षियों! जीवित रहे तो मार्च में पुनः तुम्हारे पास उत्सुकता से आयेंगे। पुनः मिलन होगा। घर प्रवेश करते ही खिड़की खोलकर तुम्हारा दर्शन करेंगे। तुम्हारा पुनः स्वागत होगा। यदि हो सका तो वायुयान से ही तुम्हारे समीप आकर तुम्हें ढूँढने का प्रयास करेंगे।

उन चीलों से कहना ऐसा वे ना सोंचे कि अब भेड़ों के फेफड़ों के टुकड़े इस छत पर नही मिलेंगे। मैं शीघ्र आऊँगा और छत पर चढ़कर उन्हें उनका प्यारा भोज खिलाऊँगा। माँ काली को भी ऐसा भोज चढ़ाया जाता है। उन चीलों को अपना अधिकार पुनः मिलेगा। फिर छत पर प्यों–प्यों की आवाज़ दूँगा। उन कौवों को कहना पुनः तुम्हारा भोज

लेकर वही आवाज़ मारूँगा, उसी ऊँची ध्वनि से; उसी पुकार से *"आओ काओ खाओ, पर यह दो नयना नही खाओ इनमें पिया (पिया है यहाँ मेरा ईश्वर) मिलन की आस"* (जिस प्रकार जाह्नवी पुकारती थी) तुम्हें फिर आमंत्रित करूँगा। सबकी याद पुनः लौटायी जायेगी। दोपहर का भोज पुनः अपने से पहले तुम्हें खिलाया जायेगा। मेरी पत्नी गर्म–गर्म ताहरी (पीले चावल पक्के हुए) से प्रति मंगल–शनिवार को तुम्हारा स्वागत करने आयेगी। स्वयं पहले की भांति प्रसन्नचित्त तुम्हारा भोज तुम्हें खिलायेगी। यहाँ के पक्षियों में भी हम अपना स्नेह प्यार बाँटते हैं इन्हें चावल–ताहरी से बाजरा प्रिय लगता है। इनके चहचहाने से, घुटर–घू घूटर–घू आदि करने से जो प्यार हमें मिलता है जो प्रसन्नता मिलती है, उसे हम नही भूल सकते। पर इनसे हमारी यह शिकायत अवश्य रहेगी कि यह हमारे पकाये पीले चावल (ताहरी) बिल्कुल कम खाते हैं। पर हम क्या करें! हम कश्मीरी; देवी–देवताओं को भी पीले चावल (ताहरी) चढ़ाकर प्रसन्न करते हैं इन पक्षियों का यहाँ पर छोटे–छोटे छतों पर बैठकर हमारा आतिथ्य भाव स्वीकार करना हमारे लिए क्या कम है? हम आभारी है इनके कि यह हमारे पास अतिथि बनकर हमारा भोज स्वीकार करके हमारा मान बढ़ाते हैं। इससे हमको सांत्वना मिलती है।

तुम यह नही समझना हम इनके ही हो गये। अरे इनसे मित्रता होती है केवल तीन मास के लिए। वे भी पिछ्ले कुछ वर्षो से। पर तुमसे है यारी (मित्रता) आयु भर की। उस यारी का क्या कहना! तुम ऐसा नही समझना कि *"जब नये यार मिलते हैं, पुराने भूल जाते हैं"* यह बात मन में कभी नही लाना। इनका एक स्थान है और आपका भी एक स्थान है हमारे दिलों में। आपकी यारी के रस का भी क्या कहना। उस आनन्द का क्या कहना। वास्तव में हैं ना हम एक ही वादी के

निवासी। एक ही अन्न, एक ही जलवायु खा–पीकर जियें हैं पले बढ़े हैं। याद तो सतायेगी ही– विरह की याद है यह।

ईश्वर से प्रार्थना है यह गनिष्ठा और भी बढ़ती रहे। दिल्ली–कश्मीर की घनिष्ठा चारों ओर फैलकर प्रतिदिन अतिघनिष्ठ बनती रहे। चारों ओर प्यार का वातावरण हो।

आपका दर्शनाभिलाषी, लेखक
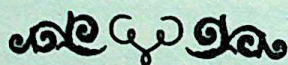
12

दूसरों का हृदय कैसे जीता जा सके।

दूसरों के मन में आयु भर से बसी विचारधारा में परिवर्तन लाना या अपनी ओर आकृष्ट करना, एक कठोर परिश्रम है तथा कभी–कभी असम्भव भी ज्ञात होता है। जब हम दूसरों को अपनी विचारधारा में बहाना चाहते हैं या उनका मत, उनकी राय बदलना चाहते हैं तब हम बुद्धितत्व के आधार पर तर्क–वितर्क का अधिक सहारा लेते हैं। उनके मन की भावनाओं और अनुभूतियों की कोई चिन्ता न करके उन्हें अपनी विचारधारा के आधीन करना चाहते हैं। हम इस बात पर कदापि ध्यान नही देते हैं कि भावनाओं और अनुभूतियों का क्या स्थान है, हम अनावश्यक वाद–विवाद को छेड़ देते हैं। अपने दृष्टिकोण को सरल, स्पष्ट, मधुर तथा हृदयग्राही बनाने की अपेक्षा हम दूसरों के दृष्टिकोण की कटु आलोचना करने लगते हैं। हमें चाहिये कि अपने विचारों की व्याख्या, उनकी उपयोगिता तथा उनसे अन्य लोगों के सम्बन्ध आदि बातों को आकर्षक ढंग से रखें, पर ऐसा नही करते हैं अपितु दूसरों के विचारों पर अनुचित ढंग से प्रहार करना आरम्भ करते हैं विचारों की नोक झोंक में हम उन्हें गलत ठहराते हैं तथा उन्हें 'कम अकल' 'बुद्धि भ्रष्ट' आदि की उपाधि भी देते हैं इस प्रकार से हम उनके आत्म सम्मान और आत्म गौरव की भावनाओं पर प्रहार करते हैं। इस व्यवहार से आपसी घृणा भी उत्पन्न होती है और अनुचित तथा तीक्ष्ण शब्दों का

आदान–प्रदान भी होने लगता है। इस प्रकार हम न उनकी विचारधारा को या उनके दृष्टिकोण को बदल सकते हैं और न हम उनको अपना मित्र बना सकते हैं अपितु उनके पूर्व विचारों को और दृढ़ करके उन्हें अपना शत्रु बना लेते हैं।

इस असफलता का मूल कारण यह है कि हम भूल जाते हैं कि मनुष्य तर्कशास्त्र की सृष्टि नही है। मनुष्य अनुभूतियों और भावनाओं, विचारों और इच्छाओं, द्वेष और घृणा, अभिमान और अहंभाव, भय और आदर, शक्ति और सम्मान का अनुगामी है। वह तर्कशास्त्र के वशीभूत कभी नही हो सकता। हम अपने आपको बुद्धिमान विचारवान तथा तर्कशास्त्री समझते हैं तथा उसी के अनुसार प्रयत्न भी करते हैं पर जब वही बात प्रयत्न अनुभव में आती है तो हमें ज्ञात होता है कि हम भी बुद्धितत्व की अपेक्षा पूर्व निर्मित धारणाओं और विचारों या कल्पनाओं पर अधिक कार्य करते हैं। तर्क, हमारे साथ काम करता नही है।

यदि तर्क–वितर्क से कभी विजय पाते हैं पर वह बहुत कम समय तक होती है। और अधिकतर व्यर्थ सिद्ध होती है। मान लिया कि हमने किसी को तर्कबल से कोई बात मनवा ली पर विश्वास रखना है कि ऐसी मान्यता बाहरी और क्षण स्थायी है। उसके विचारों में स्थायी परिवर्तन नही हो सकता। मानव स्वभाव है कि हम उन्ही बातों में विश्वास करना अधिक पसंद करते हैं जिनमें बहुत पहले से विश्वास करते आये हैं, जो विचार हमारे मस्तिष्क में घर कर चुके हैं। तर्क–विर्तक, खण्डन–मण्डन से भेदभाव तथा घृणा की उत्पति होती है। ऐसी अवस्था में दूसरों का ह्रदय नही जीता जा सकता।

दूसरों का ह्रदय हम केवल मैत्री पूर्ण ढंग से, उनके विचारों के प्रति प्रेम तथा सम्मान प्रकट करके ही जीत सकते हैं। यदि हम किसी को प्रेम और सहानुभूति के साथ संतुष्ट

कर सके या कोई बात मना सकें तो निस्संदेह हम उसके शुभचिन्तक तथा मित्र बन जायेंगे। उसका हम पर विश्वास होगा। वह हमारी बात ध्यान पूर्वक सुनेगा। हमें दूसरों के विचारों को दोषयुक्त या निरर्थक जतलाने की अपेक्षा सौहार्द्र से, प्रेम से तथा अपने सुलझे विचारों से उसके हृदय को छूकर उसे प्रभावित करने का प्रयत्न करना चाहिए। वह अवश्य हमारी ओर आकर्षित होगा। आलोचना करके बाल की खाल उतारने से कोई लाभ सिद्ध नही हो सकता। दूसरों के मन को जीतने का केवल मार्ग है–प्रेम का–सहानुभूति का। इस मार्ग पर चलकर सब मित्र–ही–मित्र दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। किसी को गाली देंगे तो बदले में गाली ही मिलेगी। किसी को मूर्ख कहेंगे तो स्वयं को भी मूर्ख की उपाधि मिलेगी। किसी की आलोचना करेंगे तो प्रत्यालोचना अवश्य मिलेगी। यदि प्रेम करेंगे तो अवश्य प्रेम का प्रतिदान होगा। जैसा बोयेंगे वैसा काटेंगे। तो क्यों न प्रेम की महान शक्ति से दूसरों को मित्र बनाकर उनका हृदय जीता जाय।

13

अनोखी भीख

वृद्धावस्था में मनुष्य जब एकान्त में किसी झंझट के बिना अपनी सुध–बुध जमाये कुछ समय बैठता है तो उसे अपने बीते जीवन के दिन याद आते हैं। ऐसे ही एक वृद्ध पुरूष था। एकान्त सोच में पड़ा था। उसके सामने उसका बीता हुआ सारा जीवन प्रत्यक्ष, नेत्रों के सामने आया। वह लड़कपन, वह बाल्यकाल, वह यौवन! कैसे आया क्या–क्या किया कैसे सारे दिन बीत गये पता ही नही लगा। आकाँक्षाओं भरा वह यौवन वन–संसार को लाँगने वाला वह यौवन, एक मस्त–सशक्त मस्तिष्क, एक हृष्ट–पुष्ट शरीर! पर अब क्या! सत्तर वर्ष की आयु। चारों ओर कमज़ोरी–शरीर कमज़ोर। आँखों में दृष्टि कम। मस्तिष्क में सोचने की शक्ति कम। वह बाल्यकाल, वह यौवन के दिन कैसे धीरे–धीरे एक डाल पर बैठी चिड़िया की भाँति उड़ गये। पता ही नही चला। सारा जीवन अपनी तथा अपने परिवार की इच्छाओं को पूरा करने में बिताया। संसार का वास्तविक रूप न समझा। अब उसके सामने केवल बीते समय की एक धुँधली सी स्मृति ही रही है। उसने सोचा सारा समय खो दिया अब वृद्धावस्था आयी, अब क्या करें। सहसा उसके सारे शरीर में एक झटका सा लगा। उसका हृदय बोल उठा। उसने सोचा अभी तक जो खोया वह खोया अब नही खोऊँगा। उसकी निद्रा टूट गयी। अब जीवन के बचे गिने–गिनाये दिनों को न खोने देगा। दृढ़ सकंल्प ने शरीर में स्थान पाया। अब अन्तिम समय को व्यर्थ न खोने देगा। ऐसी उथल पुथल मन में मच गयी कि एकदम उसने भिखारी का

वेष धारण किया और घर–घर भीख माँगने जा निकला। सकंल्प किया कि अब अन्तिम समय को व्यर्थ न खोयेगा। केवल प्रभू के गुण गायेगा और जहाँ कहीं दो रोटियाँ मिलेंगी खाकर मस्त पड़ा रहेगा।

आगे जाते जाते एक धनाढ्य का भव्य भवन आया। बाहरी द्वार पर खड़ा होकर भिखारी ने आवाज दी "बाबा! भोजन दो–बूढ़ा भूखा है।"

भिखारी की आवाज सुनते ही द्वारपाल ने धिक्कारा और आगे जा निकलने को कहा। भिखारी आगे निकला–एक गृहस्थ घर आया भिख़ारी ने आवाज़ दी – "बूढ़ा भूखा है। बूढ़े को भोजन दे दो।" घर के अन्दर से आवाज़ आई– 'ठहरो भिखारी। भिखारी ठहर गया। थोड़ी देर पश्चात घर से एक स्त्री पत्तल में भांति–भांति के पकवान सजाकर निकली। 'लो बाबा लों' स्त्री ने कहा। भिखारी स्त्री की ओर बढ़ा। स्त्री उसके हाथों पर पत्तल रखने लगी। भिखारी चिल्लाया–'ठहरो बेटी ठहरो। हम ऐसी भीख नही लेते।' स्त्री बोली–'बाबा! पत्तल में पकवान है, खाकर तृप्त हो जाओगें।' भिखारी आगे सड़क की ओर चलता गया। मानो उसने सुना ही नही। स्त्री ने ज़ोर से पुकारा– 'बाबा पकवान लेते जाओ। पकवान लाई हूँ।' भिखारी ने कहा– 'बेटी! हम ऐसी भिक्षा नही लेते। तुम मेरे हाथों पर पत्तल रखना चाहती हों मैं किसी के हाथों के नीचे अपना हाथ नही रखता। चाहे मर ही क्यों न जाऊँ। देखो–

तुलसी कर पर कर धरो कर तर कर न धरो।
जा दिन कर तर कर धरो वा दिन मरन करो।

स्त्री– 'लो बाबा! मैं इसे भूमि पर रख देती हूँ। लो, अब तो लोगे!' भिखारी–'हाँ बेटी! लूँगा, परन्तु........

स्त्री– 'परन्तु क्या? बाबा!' भिखारी–'बेटी! यह पकवान मेरे काम का नही है।'

स्त्री– 'क्यों बाबा ? हम तो हिन्दू है, ब्राहमण है।

भिखारी– 'बेटी! जाने दो। भिखारी भूखा है। देर हो रही है।

स्त्री– 'तो लो न बाबा! मैं तो तुम्हारे लिये ही पत्तल लिये खड़ी हूँ।'

भिखारी– 'जाओ बेटी! ईश्वर तुम्हारा मंगल करे, तुम्हारा सुहाग बना हरे, बाबा को छुटटी दो, भिखारी आगे बढ़ा, उसने भीख नही ली।

स्त्री किसी याचक को अपने द्वार से विमुख नही करना चाहती थी। आज उसके द्वार से एक वृद्ध विमुख हो रहा है, सो भी न जाने क्यों ?

उसकी दया भरी आँखें डबडबा आयी, उसने पुनः पुकारा बहुत विनती की– "बाबा बेटी की बात मानो पकवान लाई हूँ, कुछ खाकर या लेकर जाओ। यदि कम है तो और लाऊँगी।"

स्त्री की करूणा भरी आवाज़ ने भिखारी को आगे बढ़ने से रोका वह फिर उसी द्वार पर खड़ा हो गया।

स्त्री ने बहुत विनय की– "बेटी द्वारा श्रद्धा से लाया पकवान तो लो बाबा। यदि कम है तो और लाँऊगी। बाबा; यदि तुम विमुख लौटोगे तो मैं भी भोजन न करूँगी।"

वृद्ध ने सोचा– अहा! पुरूषों से स्त्रियों में कितनी दया–करूणा होती है। देवियाँ दयालु होती हैं त्याग उनका भूषण है। देखो न कहती है, 'यदि तुम विमुख लौटोगे तो मैं भी भोजन नहीं करूँगी' धन्य है देवी। कितना स्नेह है, तुममें वृद्ध को कोई उपाय नही सूझा। वह जिस राज़ को छुपाना चाहता था वह

उसे बताना पड़ा। भिखारी बोला–'बेटी, मुझे ऐसा भोजन चाहिये जिससे हाथ न लगाना पड़े। मुझे आत्मा का भोजन चाहिये बेटी! जिससे बाबा ईश्वर को देख सके।'

स्त्री के पास इसका कोई उत्तर न था। वह अवाक् रह गयी। उसे क्या पता था कि भिखारी की माँग वह पूरी न कर सकेगी। उसकी माँगी वस्तु, वह न दे सकेगी।

भिखारी आगे बढ़ा, कई द्वार देखे, बड़े–बड़े भवन देखे, कोई सत्तू देता था, कोई आगे का रास्ता बताता था।

भिखारी आगे द्वार–द्वार घूमता गया, बहुत थक गया परन्तु आशा के सहारे आगे बढ़ता जाता था।

भिखारी एक झोंपड़े के पास आया, उसने आवाज़ लगायी– 'भीख दे दो बाबा– भिखारी भूखा है।

अन्दर से एक स्त्री की आवाज़ आई– ''ठहरो बाबा, अभी लाती हूँ।''

'लो बाबा'– स्त्री; जिसके शरीर के वस्त्र पैबंद से भरे थे। हाथों में मैली–मैली चूड़ियाँ थीं हाथ में एल्युमिनियम का एक पुराना टूटा हुआ कटोरा लेकर आयी और बाबा को श्रद्धापूर्वक देने लगी। आगे रखकर कहा– 'इस कटोरे में खाओ, बाबा।'

'इसमें क्या है बेटी? भिखारी ने कहा।

स्त्री बोली– ''एक गरीब क्या लाती, बाबा, गरीब के घर मे ठंडे भात ही तो हैं, वहीं लायी बाबा, लो खा लो।''

''मैं इसे नही लूँगा, बेटी'' भिखारी बोला।

''क्यों बाबा ? क्या गरीब की भीख नही लोगे।'' स्त्री ने कहा

भिखारी– 'नही बेटी। इसलिये नही कि तुम गरीब हो। निर्धन को चाहे कोई धन न दे परन्तु उससे प्रेम के शब्दों में बोल

ले। इसी में स्वर्ग का सारा सुख मिलता है। भिखारी के प्रेम भरे उत्तर ने स्त्री के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न की।

स्त्री बोली– 'बाबा तुम बहुत अच्छे हो। कोई तो हमारी भीख भी नही लेता है। अच्छा बैठ जाओ, मैं यह भात गरम करके लाती हूँ।'

भिखारी– 'नही बेटी, मेरे लिए कष्ट न करो, मुझे भूख नही है।'

स्त्री– 'इसमें कष्ट की क्या बात है, मैं अभी आती हूँ।'

भिखारी– 'नही बेटी, मुझे भूख नही है।'

स्त्री– 'बाबा, झूठ बोलते हो वृद्ध होकर, वो भी अपनी बेटी से।'

भिखारी– हँसकर, बेटी तुम धन्य हो, तुमने मुझे जवाब में हरा दिया। परन्तु बेटी सच यह है कि मुझे शरीर का भोजन नही चाहिए। यह भोजन खाते खाते मेरी आयु पक गई। काले बाल सफेद हो गये। दाँत भी निकल गये। एक छड़ी के सहारे चलना पड़ता है। शरीर क्षीण हो गया है। बेटी अब मैं केवल आत्मा का भोजन चाहता हूँ। जिससे अन्तिम समय प्रभु के दर्शन कर सकूँ। बेचारी स्त्री के पास इसका कोई उत्तर न था भिखारी आगे चलता गया।

अंधेरा हो गया है। भिखारी थक कर एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उसके नेत्रों के सामने बीते जीवन की सारी घटनाएँ आयी। दिन भर में बीती घटनाओं का सारा दृश्य सामने आया। वह पछताता, सोचता रहा कि कोई उसके मनचाहे भोजन की भूख न मिटा सका। इसी सोंच में उसे नींद आई। वह स्वपन में मस्त रो रहा था। अचानक उसके सामने एक बालक आया, बालक बड़ा सुन्दर था। वह भिखारी के सामने खड़ा होकर कहने लगा–

'क्यों लो रहे हो बाबा, मिठाई चाहिए, ये लो लड्डू।'

'किसी ने आपको पीटा है ? बताओ, मैं अभी उसको ठीक कल दूँगा।'

बालक के मीठे बोल सुनकर भिखारी को हंसी आयी। वह अपना सारा दुख भूल गया। वह बालक के साथ खूब बातें करना चाहता था। वह बालक को पकड़ना चाहता था। बालक दूर भाग गया।

भिखारी बोला– 'अच्छा लड्डू दो लल्ला, क्यों बाबा को लड्डू न दोगे।

बालक– ''तुम बड़े चालाक हो। तुम मुझे पकल लोगे मैं नही आता।

भिखारी– 'नहीं, मैं नहीं पकडूंगा। लो मैंने अपनी आँखें बंद की, भिखारी आँखें बंद करता है। बालक उसके समीप आकर बोला– 'लो बाबा लड्डू, भिखारी उसे पकड़ना चाहता था। बालक दूर हट गया। ऐसे तीन बार भिखारी ने उसे न पकड़ने का वचन दिया। परन्तु बालक के समीप आते ही वह उसे पकड़ने का प्रयन्त करता था। परन्तु हर बार बालक पीछे भाग जाता।

चौथी बार फिर भिखारी बोला– 'लल्ला ला लड्डू दो मुझे, क्या रूठ गये हो बाबा से।'

बालक बोला– 'हां, लूठ गया हूँ।'

भिखारी– 'क्यों!'

बालक– 'इसलिये तुम बाल–बाल झूठ बोलते हो, बाबा। लाम! लाम! इतने भले होकल भी झूठ बोलते हो बाबा।'

भिखारी को अपने ऊपर घृणा आयी। उसने फिर कहा–'अच्छा मुझे भोजन कराओगे, लल्ला ?,

बालक– 'लाम! लाम! फिल झूठ बोलते हो बाबा।

भिखारी– कैसे लल्ला ?'

बालक– 'बाबा! तुम्ही न आज हमाले घल गये थे। अम्मा तुम्हें कटोले में भात देती थी। तुमने नही लिया। क्या भूल गये बाबा?

भिखारी–'उस समय तुम कहाँ थे लल्ला? तुम तो वहाँ नही थे।'

बालक हँसा और बोला– 'वाह, मैं तो वही था, मैं तो वहीं लहता हूँ। आहा! तुमने मुझे देखा ही नही।'

भिखारी– 'अच्छा लल्ला–तो क्या तुम मुझे आत्मा का भोजन कराओगे?'

बालक– 'हाँ बाबा।

भिखारी– 'कराओ तब। बोलो, कैसे प्रभू के दर्शन होंगे।'

बालक फिर हँसा और बोला– 'बाबा। क,ख,ग, से पढ़ाई होती है। 'क' के बाद 'ख' आता है औल 'ख' के बाद 'ग' बाबा। 'क' से कलो, तब 'ख' से खाओ फिर 'ग' से गति पाओ बाबा।

बालक की चतुरता पर भिखारी को बड़ा कौतूहल हो रहा था।

उसने फिर से पूछा– 'लल्ला! समझाकर बतला दो बूढ़े बाबा को कि भगवान कहाँ रहते हैं लल्ला?

बालक बोला– 'बाबा! तुम गलीब बन जाओ। तब आप ही वह तुम्हाले घल दौला आयेगा। नहीं तो गलीबों की सेवा कलो, बाबा, वहाँ भी वह आवेगा। बस, भेंट हो जायगी बाबा।

भिखारी बालक को पकड़ना चाहता था। बालक भाग जाता है। भिखारी पीछे–पीछे दौड़ता है इसी बीच बालक भिखारी के देखते–देखते ही समीप के एक झोंपड़े में छिप

जाता है। इसी बीच भिखारी का स्वपन टूट जाता है। वह पेड़ के नीचे बैठा है। नयनों से प्रेमाश्रु बह रहे होते हैं।

14

चीनी महँगी नही; मुफ्त बिक गई

प्रत्येक दुकानदार के लिये राजाज्ञा है कि वह अपनी दुकान पर बिक्री वस्तुओं की क्रय–विक्रय की एक सूची दुकान के बाहर ग्राहकों की सूचना के लिए लटकाये रखें। सूची का पंजीकृत होना भी अनिवार्य है। पर क्या देखते हैं कि ज्योंही सरकार नर्म पड़ जाती है दुकानदार गर्म पड़ जाते हैं तथा जब सरकार गर्म पड़ जाये तो दुकानदार नर्म क्यों न पड़ जाये। वे विवश हैं प्रशासन के आगे। प्रायः ऐसा भी अनुभव होता है ग्राहकों को अपनी दुकान की ओर कदम बढ़ाते देखकर ही कई दुकानदार उन्हें अपना शिकार जानकर अपने जाल में फंसाते हैं। जिस पर सीधा–साधा ग्राहक कई बार लूट लिया जाता है।

सेल्ज़समैन–शिप की प्रंशसा करें तो देखिये जिस वस्तु को ग्राहक खरीदने के लिए आता है तथा जिस इच्छा से आता है अपनी थैली में दूसरी वस्तु भरकर घर का पथ लेता है।

पर प्रतिदिन रविवार यानि ऐश मनाने का दिन नही होता हैं (every day is not a sunday) । कई बार ऐसा भी देखने में आता है कि यदि दुकानदार किसी विवशतावश कोई वस्तु मूल–कीमत पर या हानि पर ही क्यों न बेचे; ग्राहक फिर भी अपने आपको दुकानदार द्वारा लूट लिये जाने की शंका करता रहता है। ग्राहक भी कम चतुर नही होते हैं वे भी

अपनी चतुरता दिखाते रहते हैं। हर घाट का पानी पीकर सौदा करते हैं।

इस पर एक घटना का स्मरण होता है:– एक पुराना ग्राहक अपने दुकानदार के पास घर की कुछ वस्तुएँ खरीदने आता है। वस्तुओं की सूची दुकानदार के हाथ में थमाकर दुकानदार सूची देखता है तथा वस्तुएँ तौलता है और एक अलग विक्रय–कीमत की सूची बनाकर ग्राहक को वस्तुओं समेत थमाता है। समीप ही यह सारा दृश्य दूसरा ग्राहक दुकानदार के पास बैठकर देखता रहता है वह ताड़ गया कि दुकानदार ने कई वस्तुओं की कीमत बाज़ार से बढ़ा चढ़ाकर लिख दीं।

सारी वस्तुएँ बटोरकर पहला ग्राहक कुछ पैसे दुकानदार को देकर और कुछ उधार रखकर विदा हुआ। पास बैठा ग्राहक यह सब अवाक देखता रहा और सोचता रहा, ग्राहक लुट गया बहुत महँगा दिया बेचारे को।

कुछ क्षण पश्चात तीसरा ग्राहक आया और चीनी का भाव पूछने लगा। दुकानदार ने प्रति किलो पैंत्तीस रूपये का भाव बताया। ग्राहक ने तीन किलो तौलने को कहा। ग्राहक तीन किलो चीनी थैली में समेट कर "अच्छा भैया यह मेरे खाते में लिखना" कहकर विदा हुआ।

यह देखकर दूसरे ग्राहक से अब रहा न गया। मन ही मन दुकानदार को धिक्कारा। कैसा दुकानदार है। पहले ग्राहक को भी लूटा अब इसको भी पैंत्तीस रूपये चीनी प्रति किलो बेचकर लूट लिया जबकि सारे बाज़ार में चीनी केवल तीस रूपये प्रति किलो बिक रही है। वह उत्तेजित होकर तथा शुभचिंतक बनकर एकदम दुकान से नीचे उतरा और इस ग्राहक के गये हुए मार्ग की ओर जाकर तेज़–तेज़ पग मारता हुआ ग्राहक को ढूँढ़ने लगा– कुछ दूर जाकर उसे देखा और

तेज़–तेज़ चलता गया उसके निकट पहुँचकर हाँपता–हाँपता कहने लगा। "भैया–सुनो, आपको दुकानदार ने लूट लिया। चीनी पैंत्तीस रूपये प्रति किलो दे दी जबकि आपको पता नही है कि सारे बाज़ार में चीनी का भाव आजकल केवल तीस रूपये है। आपको लूटा है इस महँगे फरोश ने।" ग्राहक इस मित्र के शुद्धमन और सहानुभूति का आभार प्रकट करते हुए कहने लगा।

"भैया, आपका बहुत धन्यवाद है इस सूचना के लिए। पर आपसे सच बताऊँ, मुझे यह चीनी महँगी नही अपितु मुफ्त ही मिल गयी। आपने देखा मैंने दुकानदार को कुछ पैसे नही दिये। केवल इतना कहा कि मेरे खाते में लिखना। देखिये–अब यह खाता कब खुलेगा।" आपका धन्यवाद।

शुभचिंतक सोच में पड़ गया। सोचा–अरे यार ठीक ही तो है चीनी महँगी नही, मुफ्त ही बिक गयी। मैं तो दुकानदार को ठग मान गया था। पर यह ग्राहक तो महाठग निकला इसने चीनी महँगी क्या मानो मुफ्त ही प्राप्त की। समझो चीनी महँगी नही मुफ्त ही बिक गई। देखिये खाता कब खुलेगा।

रोशन लाल काचरू
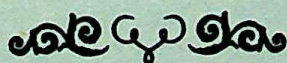
15

ऐसा क्या होता है, क्यों होता है।

देखा गया है कि जिस परिवार के सारे सदस्य एक स्थान पर बैठकर एक समय परस्पर मिलजुल कर भोजन करते हैं, विशेषकर रात्रि का भोजन, जिस समय समयाभाव नही होता है वह परिवार एक सुखी सम्पन्न परिवार होता है। इस परिवार में एक दूसरे के मन को भलि–भांति परखा जाता है। परस्पर एक दूसरे के प्रति प्रेम, स्नेह तथा आदर बाँटा जाता है। मन से मन मिलते हैं। दुख–सुख बाँटा जाता है। दिन भर की थकान एक साथ मिल जुलकर हँसी मजाक में टल जाती है। एक आनन्दित वातावरण का अनुभव होता है। उस पर भी जब छोटे–छोटे, नन्हें–मुन्ने बच्चों की किलकारियाँ, अठखेलियाँ, उनका रूठना सामने हो तो क्या कहना! सारे वातावरण में चार चाँद लग जाते हैं

पारस्परिक स्नेह, प्रेम, मेलमिलाप एक दूसरे के प्रति चिन्ता आदि का विचार करते एक समय की घटना यहाँ याद आती है।

एक समय ऐसा ही सुखद उपरोक्त परिवार एक चादर बिछाकर भोजन कर रहा था। बड़े पिता जी के समीप उसका पुत्र तथा उसके समीप उसका पुत्र बैठकर आनन्दपूर्वक भोजन कर रहे थे। बड़े पिता जी ने अपने भोजन पर मांस के दो टुकड़े देखकर एक टुकड़ा अपने पुत्र की थाली में डाला,

यह सोचकर कि मेरा पुत्र ही खाये तथा हृष्ट–पुष्ट बन जाये। पर क्या देखते हैं कि इस पुत्र ने यह मांस का टुकड़ा अपनी थाली से उठाकर अपने पुत्र की थाली में डाला। यह विचारते कि मेरा ही पुत्र यह मांस का टुकड़ा खाकर हृष्ट–पुष्ट बन जाये। बड़े पिता जी ने यह सब देखा तो आश्चर्य होकर अपने पुत्र से थोड़ा क्रुध होकर बोले–"क्या हुआ तुमको! यह क्यों उसकी थाली में डाला।"

बेटे ने नम्र भाव से तथा कुछ हँसते हुए उत्तर दिया "पिता जी, जो आपको मेरे प्रति हुआ था वही मुझे इसके प्रति यानी अपने पुत्र के प्रति हुआ।"

भाव यह है– कि माता–पिता अपने आपको, अपने स्वयं को, अपने पुत्र–पुत्रियों के प्रति अपना सर्वस्व लुटाते हैं। किसी अभिप्राय के बिना, किसी लालच के बिना, किसी आकांक्षा के बिना, यहाँ तक कि उनकी दोनों प्रकार की आवश्यक तथा अनावश्यकताओं की पूर्ति करते करते अपनी वृद्धावस्था, अपनी निजी जीवन की आवश्यकताओं को बिल्कुल भूलकर अपने आपको प्रायः कंगाल बनाकर बैठते हैं।

भला यह क्या होता है! क्यों होता है? क्या यही मातृत्व–पितृत्व होता है? क्या यही उनकी ममता है? लुटाओं अपने संतानों पर सब कुछ, यद्यपि वे; युवक होकर अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य भी क्यों न हों। यह क्या होता है कि यद्यपि पुत्र कुपुत्र भी निकले पर माता 'कुमाता' कभी नही बन सकती।

"कुपुत्रों जाये तत् कुचय्त अपि माता कुमाता न भवती।"

वह माता–पिता बड़े भाग्यवान हैं जिनकी सन्तान उनकी सेवा करें। विशेषकर निस्सहाय निर्जर अवस्था में। जब एक निर्जर पंज़र किसी की खाली बात रूपी सहानुभूति के लिए तत्पर होते हैं तथा तरसते रहते हैं और तड़पते हैं। वे

पुत्र अति भाग्यवान हैं जिनके भाग्य में 'श्रवण कुमार' बनकर माता–पिता की सेवा करना लिखा हो। पर कहीं–कहीं ऐसा भी देखने को मिलता है कि वृद्ध माता–पिता कितनी ही दुर्दशा में क्यों न हों। कुछ सन्तान अपनी मौज मस्तियों में रहकर उनकी ओर आकर्षित छोड़, ध्यान भी नही देते! उनके अस्तित्व को भूले बैठे रहते हैं। अपना कर्तव्य भूले बैठ जाते हैं। जन्मदाता को अपरिचित समझते हैं। ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे कभी देखा ही न हो। चाहे माता–पिता अन्य सहायकों पर ही क्यों न निर्भर हों। दूसरों के आश्रित रहकर जीवन की अन्तिम घड़ियाँ क्यों न गिनें! समय यह क्या कर दिखाता है! क्यों एक सम्पन्न परिवार के मन बंट जाते हैं। दिलों में शंकाएँ उत्पन्न होती हैं। परिवार के पथ बंट जाते हैं। सूत्र में गाँठ पड़ जाते हैं। कहीं कहीं माता पिता भी बंट जाते हैं। वे बोझ समझे जाते हैं। कहीं कहीं घृणा की नदी बहती है। प्रेम, स्नेह, आदर तथा श्रद्धा की गति में यति आती है। क्यों माता–पिता का जीवन–वृतान्त एक खुली पुस्तक के पन्ने बनकर रह जाता है? यह क्यों होता है ऐसा? क्यों वृद्धाश्रमों के द्वार खुले रहते हैं?

धन्य हैं वे सन्तान जो दिन रात अपने माता पिता की सेवा में लगे रहते हैं। उन्हें ही अपना सर्वस्व मानते हैं। उनमें ही ईश्वर का रूप देखते हैं और उनके आशीर्वाद से अपने जीवन को सफल बनाकर निश्चिन्त स्वर्गीय जीवन प्राप्ति के अधिकारी बनते हैं।

सौभाग्यशाली हैं वे माता–पिता भी जिनकी सन्तान उनके बुढ़ापें की लाठी बने हों तथा श्रवण कुमार बनकर उनकी वृद्धावस्था को सुखद एवं सुखमय बना रहे हों।

16

क्यों आते हैं परिवर्तन!

मनुष्य जब एकान्त में निश्चिन्त, बिना किसी रोक के, बिना किसी झंझट के एकाग्रचित बैठने का अवसर पाता है तो प्रायः उसके मन में भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं ऐसे विचारों में अधिकतर विचार ऐसे होते हैं जो जीवन के अतीत दिनों की याद दिलाते हैं। विचारों तथा प्रश्नों के ढेर उत्पन्न होते हैं। मिनटों में मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुँचता है, कुछ पता ही नही चलता है। बचपन से लेकर गत वर्ष, गत मास, गत सप्ताह यहाँ तक गत दिवस की घटनायें एक–एक करके मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर करवटें बदलती रहती हैं।

ऐसे ही; मैं भी एक दिन विचारों में डूबा एकान्त बैठा था कि मेरे सम्मुख घटित कुछ घटनायें आयीं। कैसे बीता बचपन, कैसे यौवन और कैसे आया यह बिन बुलाया बुढ़ापा! कुछ पता ही नही चला। मैं सोचता रहा। यह बदलाव, यह परिवर्तन; आखिर क्यों आता है ऐसा! बचपन के वे निश्चिन्त दिन; क्यों एकदम आँख मचोली खेलते चले गये। जहाँ न किसी का भय था, न किसी की चिन्ता, न किसी का लेना–देना। केवल निर्मलता ही निर्मलता। फिर वह यौवन! जो सिखाने लगा कर्मठता। जिसने सिखाया सीना तानकर संकटों–आपत्तियों का आलिंगन कर सामना करना। जिसने सिखाया जीवन का रहस्य। जिसने दिया गृहस्थ, एक सम्पन्न परिवार, जीवन का सुख। जिसने सिखाया जीवन में सफलता पाने का रहस्य। जिसने दिये जीवन के सिद्धान्त। यथा शक्ति

सन्तुष्टता। फिर यह पूर्व कर्मों को भोगने वाली वृद्धावस्था! निर्बल काया। रोगग्रस्त अवस्था। केवल यौवन की यादों पर इठलाने वाली अवस्था। कष्टों भरी पूर्व कर्मों पर सन्ताप करने वाली अवस्था। दूसरों पर बोझ बनी हुई अवस्था। न घर पर चैन न वृद्धाश्रम में सन्तोष। सब ओर बेचैनी की अवस्था!

आखिर क्यों आते हैं सृष्टि पर ऐसे परिवर्तन! हर स्थान परिवर्तन। मनुष्य–वनस्पती ऋतु आदि सर्वत्र परिवर्तन। क्या जीवन की परिभाषा परिवर्तन है? प्रयत्न और परिवर्तन क्या यही विधाता का करिश्मा है? सबको नचाओ, दौड़ाओं, भगाओ। विभिन्न परिस्थितियों में बांधाएँ यदि आये सामना किया तो सफल वरना जीवन विफल, चारों ओर संघर्ष।

मैं चिन्तामय मग्न विचारों में डूबा था सहसा मुझे एक झटका लगा। मेरी दृष्टि तभी स्वयं ही अपने सम्मुख दीवार पर लटकाये हुए "गीता–सार, गीता–रहस्य।" कलेण्डर पर पड़ी। मेरी दृष्टि खुल गई– लिखा है:– (संक्षिप्त में:–)

- क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो। किससे व्यर्थ डरते हो।
- जो हुआ, वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है, वह अच्छा हो रहा है। जो होगा, वह भी अच्छा ही होगा। तुम भूत का पश्चाताप न करो। भविष्य की चिन्ता न करो। वर्तमान चल रहा है। तुम्हारा क्या गया, जो तुम रोते हो? तुम क्या लाये थे, जो तुमने खो दिया? तुमने क्या पैदा किया था, जो नाश हो गया? न तुम कुछ लेकर आए, जो लिया, यहीं से लिया। जो दिया, यहीं पर दिया। जो लिया, इसी (ईश्वर) से लिया। जो दिया इसी का दिया।
- परिवर्तन संसार का नियम। मेरा–तेरा, छोटा–बड़ा, अपना–पराया, मन से मिटा दो, विचार से हटा दो, फिर सब तुम्हारा है, तुम सबके हो।

- तुम अपने आपको भगवान को अर्पित करो, यही सबसे उत्तम सहारा है। जो इसके सहारे को जानता है वह, भय, चिन्ता, शोक से सर्वदा मुक्त है।
- जो कुछ भी तू करता है, उसे भगवान को अर्पण करता चल। ऐसा करने से तू सदा ज़ीवन–मुक्त का आनन्द अनुभव करेगा।

मेरे शरीर में धैर्यता आई। सोंचा क्यों न ज़ीवनान्त तक इसी का लाभ उठाऊँ। ईश्वर के चरणों में सर्वस्व अर्पण करूँ और ज़ीवन–मुक्त का आनन्द पाऊँ। व्यर्थ में क्यों ज़ीवन गंवाऊँ।

उसने स्वयं कहा है निष्काम कर्म करता जा फल मैं स्वयं देने वाला हूँ।

रोशन लाल काचरू
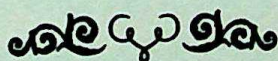
17

मेरा भारत महान

'मेरा भारत महान' इस शीर्षक को आज तक कई महानुभावों ने अपने निबन्धों, लेखों तथा रागों आदि द्वारा सही शब्दों में दर्शाकर सम्मानित किया है। अपने राष्ट्र पर गौरव करना हर देश प्रेमी का परम कर्तव्य है। राष्ट्र मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पति है। मनुष्य की हर प्रकार की पुष्टि चाहे शारीरिक हो या मानसिक अपने देश के प्रति आदर, श्रद्धा और प्रेम होना अनिवार्य है। जिसके हृदय में यह न हो; जो अपने कर्तव्यों से वंचित रहता हो वह कृतघ्न नही तो क्या है ?

ऐसे व्यक्ति के लिये कहा गया है:–

जिसको न निज गौरव तथा

निज देश का अभिमान है।

वह नर नही नर–पशु निरा है

और मृतक समान है।।

महान देश भारत, जो सब देशों में शिरोमणि है उसकी निजी अनुभवों के आधार पर तथा कई घटनाओं और परिस्थितियों का दृग्गोचर करते माता सरस्वती की वंदना करके आज यहाँ अपने महान राष्ट्र का गौरव दर्शाने का प्रयास करता हूँ। इसकी प्राकृतिक शोभा पर मुग्ध होकर गुप्त जी ने कहा है:–

भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ ?

फैला मनोहर गिरि हिमालय, और गंगा जल कहाँ!

सम्पूर्ण देशों से अधिक किस, देश का उत्कर्ष है ?

उसका कि जो ऋषि–भूमि है, वह कौन भारतवर्ष है!!

ठीक ही तो है कौन कर सकता भारतवर्ष की समानता। कौन इसकी प्रतिभा पर मुग्ध न हो जाये। यह हमारा देश–सिन्धु देश, आर्यावर्त, प्राचीन देश हिन्दुस्तान है, यहाँ सारे धर्म–जाति भाई–चारे का सन्देश देते आ रहे हैं। इसी महान देश के वीर सैनिक, देश भक्त, क्रान्तिकारी बिना किसी मतभेद के समय–समय पर आक्रमणकारियों पर एकजुट होकर टूट पड़े हैं और उन्हें पीछे धकेला है। इस देश के देशभक्तों, नेताओं, वीरों ने पंद्रह (15) अगस्त 1947 ई0 में अपनी मातृभूमि को अंग्रजों की 200 वर्ष की पराधीनता से स्वतन्त्र कराया है। 26 जनवरी 1950 यहाँ अपना नया संविधान लागू कराके दृढ़ संकल्पित अपने भारत को विश्वभर का एक विकासशील देश बनाया है। यह उस महात्मा गाँधी जिन्हें हम गर्व से राष्ट्रपिता कहते हैं अर्थात उस बापू का देश है जो प्रेम का पूजारी था। जिसने सच्चाई और अहिंसा पर विश्वसनीय होकर पथ प्रदर्शन करके हमें स्वतन्त्रता का प्रकाश दिखलाया। जिनके मुँह से प्राण त्यागते समय 'हे राम' ही निकला था। यह भगवान राम, महात्मा बुद्ध, गुरू नानकदेव, सम्राट अशोक, कबीर चन्द्रगुप्त, महावीर जैन, मीरा आदि का देश रहा हैं। जिन्होंने देश को आध्यात्मिक एवं भौतिक बल सम्पन्न बनाया था। इस महान देश के लिए भगत सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, सुभाष चन्द्रबोस आदि सेनानियों ने अपना बलिदान दिया है। यह उस पटेल जी का देश है जिन्होंने पूर्व स्वतन्त्रता के 563 प्रदेशों वाले भारत को केवल 16 प्रदेशों में एकीकरण कर दिखलाकर चैन लिया था। उस देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल

नेहरू ने पचंवर्षीय योजनाओं पर मार्ग दर्शन करके इस देश को उच्च शिखर पर पँहुचाते ही दम लिया था। अपना सर्वस्व देश पर ही त्यागा था। यह उस लालबहादुर शास्त्री का देश है जो कृषि प्रेमी था जिसने देश कल्याण हेतु सोमवार का व्रत रखवाया था। जिसने 'जय जवान–जय किसान' का नारा देकर अपनी प्रधानमंत्री कालीन अल्प अवधि में देश को कहाँ से कहाँ उच्च शिखर पर पहुँचाया था। यह उस इन्दिरा गाँधी तथा राजीव जी का देश है जो शक्तिशाली, प्रतिभाशाली, सफल, कर्मठ प्रधानमंत्री रहकर देशद्रोहियों द्वारा देश पर बलि हुए।

बीत गये वे पराधीनता की हथकड़ियों में जकड़े हुए निर्धनता, निर्बलता तथा भूखमरी के दिन। समाप्त हुए वे कलकत्ता की सड़कों पर बैल–घोड़े की भांति मनुष्य द्वारा भीषण ग्रीष्म में बोझ लादे दो पहिया रेड़ी गाड़ी हाँकने वाले दिन। अब हमारी भूमि हरित–भरित है। हमारे पंजाब, हरियाणा के गोदाम चावल–अनाज से भरे पड़े रहते हैं। खनिज पदार्थों का निर्यात होता है। वन–वनस्पति–उपवन विभिन्न पदार्थो से खिले रहते हैं। यह कल–कारखानों का देश है। यहाँ हर बच्चा शिक्षा पाने का अधिकारी है, हर निवासी निवास स्थान का अधिकारी है। यहाँ हर प्रकार के उपज उपजाये जाते हैं। हर क्षेत्र के वैज्ञानिक है, हर क्षेत्र के चिकित्सालय है और मनोवांछित शिक्षालय, अनुसंधालय हैं।

यहाँ के मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारों, गिरजों से हर प्रातः, सायं शब्दनाद, कीर्तन–अज़ान बजते हैं। घण्टियाँ बजती हैं, हर स्थान ईश्वर प्रसन्नचित्त आशीर्वाद देते दिखाई देते हैं।

मेरा भारत महान है। यह विश्व का सबसे बड़ा गणतन्त्र, लोकतन्त्र देश है। यह 125 करोड़ जनसंख्या वाला भिन्न मत–जातियों वाला देश है। यहाँ 29 प्रदेश हैं।

इस देश को छः ऋतु सजाते हैं यह नदियों, समतलों, पठारों, पर्वतों का देश है। यहाँ की गरिमा का बखान पूर्व काल से विदेशी पर्यटक करते आये है। यह देश हर क्षेत्र में सोने की चिड़िया कहलाता आया हैं। यह ऋषियों मुनियों का देश रहा है। यहाँ की प्रतिभा लोकतन्त्र–गणतन्त्र दिवस प्रतिवर्ष राजधानी दिल्ली राजपथ, लालकिला पर दर्शाई जाती है।

इसके उत्तर में ऊँचा हिमालय पर्वत इसके मुकुट समान है। दक्षिण में सागर इसके पाँव धोता है। यह वह भारत है जहाँ 'वसुदेव कुटुम्बकं' अर्थात 'सब विश्व एक कुटुम्ब, एक परिवार है' का पाठ पढ़ाया जाता है। इस भारत का प्राणी अपने द्वार पर अतिथि का 'अतिथि देवोभवः' अर्थात् 'अतिथि 'देवता समान है' जानकर स्वागत हेतु तैयार खड़ा रहता है। यह देश चरित्र का आर्दश रहा है। यहाँ समता, मानव–ममता तथा श्रम का पाठ पढ़ाया जाता है।

भारत देश का राष्ट्रगान गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर का दिया "जनगण मन–अधिनायक जय है...." है तथा देश–भक्ति दूसरा राष्ट्रगीत "वन्दे मातरम्" श्री बंकिम चन्द्र चटर्जी की देन है। इस देश का राष्ट्र तिरंगा ध्वज वीरता, हरियाली, त्याग तथा शान्ति का प्रतीक है।

इस देश की गरिमा का बखान डॉ. इकबाल की कविता 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तान हमारा' की इस पंक्ति से प्रकाशित होता है–

'यूनान मिस्त्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,
अब तक मगर है बाकी नामों निशां हमारा,
सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्तान हमारा।।
इस गौरवशाली देश का गौरव अनन्त है।

यह कल्पवृक्ष समान सब सुखों का दाता है। यहाँ "सत्य मेव जयते" पर दृढ़ विश्वास हैं। इस महान देश पर हम सब भारत वासियों को तन–मन–धन न्यौछावर करने के लिये तत्पर रहना चाहिए।

श्रीधर पाठक के शब्दों मेंः–

जय उज्ज्वल कीर्ति विशाल हिन्द,
जय करूण सिंधु कृपालु हिन्द।
जय जयति सदा स्वाधीन हिन्द,
जय जयति जयति प्राचीन हिन्द।
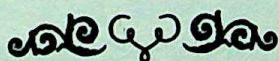
18

सच्चा - न्याय (क)
सुल्तान गयासुद्दीन

दिल्ली का बादशाह गयासुद्दीन एक बार तीर चलाने का अभ्यास कर रहा था। अचानक एक तीर लक्ष्य से चूककर एक बालक के सीने में लग गया और उसकी मृत्यु हुई। बालक के माता–पिता रोते बिलखते दिल्ली के प्रधान काजी सिराजुद्दीन के पास चले गये। उनकी फरियाद सुनकर काजी ने उन्हें दूसरे दिन न्यायालय में उपस्थित होने को कहा।

काजी ने दूसरी ओर इसी समय बादशाह के पास संदेश भेज दिया कि उनके विरूद्ध हत्या का अभियोग है, अतः वे न्यायालय में दूसरे दिन उपस्थित हों।

नियत दिन, नियत समय बादशाह गयासुद्दीन साधारण वेश में न्यायालय में उपस्थित हुए। काजी ने उनका कोई सम्मान नहीं किया, इसके विपरीत उन्हें साधारण अपराधी के समान खड़ा होने को कहा। सुल्तान शान्त खड़े रहे। उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया। बालक के माता–पिता से क्षमा माँगी और उन्हें बहुत सा धन देने का वचन देकर उनसे राजीनामा लिखवाकर सुल्तान ने काजी को दे दिया।

माता–पिता से संतुष्टी प्राप्त करने के पश्चात काजी न्यायासन से उठा और आगे बढ़कर उसने बादशाह को सलाम किया। बादशाह ने अपने वस्त्र में छिपी एक छोटी तलवार दिखाते हुए कहा– 'काजी जी! मैं आपकी आज्ञानुसार न्याय

का आदर और पालन करने और आपकी परीक्षा करने न्यायालय में आया। यदि मैं देखता कि आपने मेरे डर से न्यायादेश में किसी प्रकार कोताही की या किसी प्रकार से न्याय से विचलित होते तो यह तलवार आपकी गर्दन काट देती।'

ऐसा सुनकर काजी सिराजुद्दीन ने अपने न्यायालय के पास रखी एक बेंत को उठाकर कहा– 'जहांपनाह! यह अच्छा हुआ कि आपने न्याय का पालन और सम्मान किया। यदि आप तनिक भी विचलित होते तो इस बेंत से आपकी चमड़ी उधेड़ डालता, बाद में आप मुझे फाँसी ही क्यों न दे देते।' बदशाह उसे सुनकर प्रसन्न हुआ। उसके सच्चे न्यायाधीश होने की प्रशंसा की और उसे पुरस्कृत किया।

19

सच्चा न्याय (ख)
कश्मीर नरेष यशस्करदेव

विक्रमीय दशम शताब्दी में कश्मीर के सिंहासन पर महाराज यशस्करदेव शासन करते थे, तो द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि द्वार पर कोई मनुष्य न्याय हेतु आया है कहता है कि यदि वह यहाँ से भी न्याय मिले बिना ही चलने पर विवश हो जाये तो वह अपने प्राण त्याग देगा। महाराज ने उसे सभा में बुलाकर कारण पूछा। व्यक्ति ने दुख भरे स्वर में कहा– 'महाराज! मैं इसी नगर का वासी हूँ और एक व्यापारी हूँ। व्यापार में घाटा होने के कारण विवश होकर मुझे अपना मकान और सब सम्पत्ति बेच देनी पड़ी। परंतु मैंने अपने मकान का एक भाग जिसमें कुआँ और सीढ़ी है, अपने लिये रख लिया था। मैं व्यापार करने विदेश चला गया तो मेरे पीछे से उस मकान को भी छीन लिया गया और मेरी पत्नी और बच्चों को घर से बाहर किया गया है। मैंने न्यायाधीशकों को सच–सच समाचार दिया परन्तु किसी ने भी कुछ न सुना। अतः अब आपकी शरण में एक विश्वास लेकर आया हूँ। आप देश के राजा हैं मुझे आपकी न्यायप्रियता में विश्वास है।'

राजा ने न्यायाधीशकों को और उस नागरिक को, जिसने मकान लिया था, बुलाकर यह समाचार कहा। न्यायाधीशकों ने उत्तर दिया कि उन्होंने वैसा ही किया है जैसा प्रतिज्ञापत्र में लिखा है तथा हमारा निर्णय प्रतिज्ञापत्र अनुसार ही है।

राजा ने नागरिक के घर से मकान बेचने के कागज़ मँगवाये। उस बही (कागज़ों) को राजा ने अच्छी प्रकार पढ़ा तो उसमें एक हज़ार रूपये राजलेखक को दिये लिखे थे। राजा ने न्यायधीशों से पूछा कि इस साधारण से क्रय–विक्रय के लिये राजलेखक को एक हज़ार रूपये देने का क्या अर्थ है? क्या यह घूस नही है? राजा ने पुनः मकान के विक्रय–पत्र को सावधानी से पढ़ा तो पता चला कि 'सोपान–कूप रहित गृह' के स्थान पर राजलेखक ने 'सोपान–कूप–सहित गृह' बना दिया था। राजा ने न्यायालय के लेखक को राजसभा में बुलवाया। उसने लज्जित होकर पूरी सभा में स्वीकार कर लिया कि उसी ने 'र' के स्थान पर 'स' बनाकर यह पाप कर्म किया है। राजा ने वह मकान, कूप और सोपान व्यापारी को वापस दिलवा दिये और राजलेखक एवं मकान मोल लेने वाले को दण्ड दिया।

20

न्यायाधीश श्री बंकिम चन्द्र चटर्जी

न्यायाधीश बंकिम चन्द्र चटर्जी बंगाल के रहने वाले थे। अंग्रेज़ सरकार की नौकरी करते हुए भी देश भक्ति की और देश को बन्धन मुक्त करने की अग्नि प्रचण्ड वेग से इनके भीतर जला करती थी। राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' जिस पर सहस्त्रों देशवासियों का बलिदान हो चुका है, इन्हीं का निर्माण किया हुआ है। ये एक उच्चकोटि के लेखक और कवि भी थे। श्री अरविन्द जी ने इन्हें 'भविष्यदर्शी ऋषि कहा है।'

बंकिम चन्द्र चटर्जी एक मजिस्ट्रेट थे। एक बार एक ग्रामीण ब्राह्मण का पुत्र कोलकाता में पढ़ता था। कोलकाता से उस ब्राह्मण को समाचार मिला कि उसका पुत्र बहुत रूग्ण (बीमार) है। दरिद्र ब्राह्मण बहुत घबराया और पैदल कोलकाता के लिये चल पड़ा। मार्ग में रात हो जाने पर उसने एक ग्राम में रात भर ठहरने का निश्चय किया।

उसने एक घर के द्वार पर जाकर अपना परिचय देकर रात के लिए विश्राम करने की अनुमति माँगी, किन्तु नही मिली। वह आगे बढ़ा। कई घरवालों से एक रात्रि के लिए विश्राम हेतु शरण देनें की विनती की। परन्तु नही मिली। सब ने नकारा और द्वार बन्द कर दिए। बेचारा मार्ग में थकावट और फिर भूख–प्यास तथा ऊपर से पुत्र की चिन्ता से बहुत व्याकुल हुआ। वह गाँव वालों की अमानुषिक व्यवहार से भी चकित हुआ। बड़ी कठिनाई में पड़ा था कि एक व्यक्ति को

दया आई। उसने उसे अपने यहाँ ठहरा लिया। परन्तु उसे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि इतने बड़े गाँव में केवल एक व्यक्ति ने उसे रात के ठहरने के लिये शरण दी और वह भी बहुत कठिनाई सें। ब्राह्मण ने अपने आतिथ्य से इसका कारण पूछा। उसने बतलाया कि कुछ दिनों से गाँव में चोरी की कई घटनायें घटी। कई यात्री ऐसे ही शरण माँगने आये परन्तु रात्रि में ही कुछ न कुछ चोरी करके चले गये। इसलिये गाँव वालों ने किसी को आश्रय न देने का निश्चय किया है।

ब्राह्मण भोजन करके लेट गया, किन्तु पुत्र की चिन्ता में उसे नींद न आयी, वह केवल करवटें बदलता रहा। मध्य रात्रि में उसे अचानक कुछ आहट सुनाई दी। वह उठ बैठा। उसने बाहर निकलकर देखा कि एक व्यक्ति संदूक सिर पर उठाये भाग रहा है। उसे संदेह हुआ। वह चोर–चोर चिल्लाता हुआ उसके पीछे भागा और उसे पकड़ लिया। संदूक लेकर भागने वाला एक सिपाही था। सिपाही ने संदूक को नीचे रख दिया और चोर–चोर कहकर उलटे ब्राह्मण को ही पकड़ लिया। गाँव के बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। उन्होंने देखा कि एक सिपाही एक अज्ञात व्यक्ति को पकड़े हुए है और संदूक भी पास में पड़ा है। उन्होंने ब्राह्मण को ही चोर समझा। उसे थाने में ले जाया गया और उस पर अभियोग चला।

यह अभियोग बंकिमचन्द्र चटर्जी के न्यायालय में गया। दोनों के वक्तव्य को सुनकर बंकिम बाबू यह तो ताड़ गये कि ब्राह्मण निर्दोष है और सत्य बोल रहा है, किन्तु निर्णय देने के लिए किसी बाहरी प्रमाण की आवश्यकता थी। उन्होंने उस दिन की कार्यवाही स्थगित कर दी।

दूसरे दिन न्यायालय में एक व्यक्ति ने आकर मजिस्ट्रेट बंकिम बाबू से कहा 'तीन कोस की दूरी पर एक हत्या हो गयी है। लाश वहाँ पड़ी है।'

बंकिम बाबू ने तुरन्त कटघरे में खड़े उस पुलिस के सिपाही और ब्राह्मण को आदेश दिया कि 'तुम दोनों जाकर उस शव को अपने कंधों पर उठाकर ले आओ।'

दोनों बतलाये गये स्थान पर पहुँचे। वहाँ शव बँधा हुआ रखा था। दोनों ने उसे अपने कंधों पर उठाया और चल पड़े। पुलिस का सिपाही हट्टा-कट्टा था, वह मौज से चल रहा था। पर ब्राह्मण बहुत चिन्तित था। वह एक तो पुत्र की चिन्ता और उसके ऊपर इस विपत्ति के कारण रो रहा था। उससे चला भी नही जा रहा था। उसे रोते देखकर सिपाही ने हँसते हुए कहा– 'कहो पंडित ज़ी! मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि मुझे चुपके से ले जाने दो, नही तो विपत्ति में पड़ोगे। तुम नही माने, अब फल भोगो अपनी करनी का, अब कम-से-कम तीन वर्ष की जेल की हवा खानी पड़ेगी।'

ब्राह्मण बेचारा अवाक् था। वह रोता हुआ न्यायालय में पहुँचा। न्यायालय को स्थूल प्रमाण चाहिये। न्यायाधीश की आज्ञा से शव न्यायालय में रखा गया और उसके बन्धन खोल दिये गये।

अब अभियोग प्रारम्भ हुआ। जिस समय दोनों पक्षों के वक्तव्य हो चुके तो एक विभिन्न घटना घटी वह शव उन वस्त्रों को उतार कर खड़ा हो गया। और उसने मार्ग में हुई पुलिस के सिपाही और ब्राह्मण की बातों को कहा। उसकी बातें सुनकर बंकिम चन्द्र ने ब्राह्मण को निरापराध घोषित किया और पुलिस के सिपाही को चोरी का अपराधी ठहराकर दण्ड दिया।

बंकिम बाबू ने चोरी का पता लगाने के लिये स्वयं यह युक्ति निकाली थी और एक विश्वस्त व्यक्ति को मृत का अभिनय करने के लिये नियुक्त किया था।

यदि सभी न्यायाधीश सच्चे हृदय से सत्य की खोज करने का प्रयत्न करें तो अधिकांश अभियोग में सत्य का पता चल सकता है और सच्चा न्याय हो सकता है।
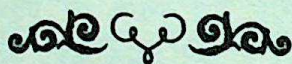
21

कौन जीता। कौन हारा।

मनुष्य के दैनिक जीवन में कुछ घटनायें ऐसी घटती हैं जिनसे पुरानी घटी घटनायें सहसा याद आती हैं तथा ऐसा अनुभव होता है कि वे कुछ ही घण्टे पूर्व घटी हों। चाहे वे कितनी ही पुरानी क्यों न हों।

अभी यानी दो नवम्बर 2010 की बात है। मैं अपने एक मित्र श्री राजकुमार तलवार की दुकान लाल चौक श्रीनगर स्थित, पर उनका हाल चाल पूछने गया। कश्मीर घाटी में वैसे तीन वर्षों से स्थिति ठीक नही रही तथा गत पाँच मास से वातावरण ऐसा बिगड़ा है कि सारा कार्य ठप रह गया है। कुछ अलगाववादियों, जो भारत से स्वतन्त्रता माँगते है, के विद्रोह के कारण चारों ओर अशान्ति फैली है। कार्यालय, स्कूल, कालेज, व्यापारिक संस्थायें सप्ताह में क्या; महीने में केवल एक दो बार खुलने का नाम लेते हैं। स्थिति ऐसी बनती है कि कभी हर ओर अशान्ति और बेचैनी। अनुशासकों की नींद हराम। कभी अनुशासक नर्म तो विद्रोही गर्म, कभी अनुशासक गर्म तो विद्रोही नर्म। साधारण जनता परेशान। इसी कारण मैं श्री तलवार जी का हाल चाल पूछने उनकी दुकान पर आया पर मुझे देखते श्री तलवार ने मुझे आसन पर बैठने का संकेत किया तो स्वयं एकदम मेरे एक शिष्य को टेलीफोन द्वारा दुकान पर उपस्थित होने को कहने लगे। मेरा शिष्य अपनी एक पारिवारिक समस्या के समाधान के लिये मुझसे अवश्य मिलना चाहता था। जिसका अनुरोध उसने श्री तलवार से किया था। इस कारण मुझे कुछ देर शिष्य की प्रतीक्षा में

दुकान पर रूकना पड़ा। इसी बीच करगिल से दो महिलायें दुकान पर आई। गत चार वर्ष से दुकान से ली गयी सामग्री का कुछ लेन–देन शेष रहा था। यह राशि इनके एक निजी नातेदार ने शेष रखी थी और आज चुकता करने हेतु इन्हें भेजा था। उनका परिचय पाकर श्री तलवार ने साफ–साफ कह दिया कि उन्होंने दो–चार बार संदेश भेजा था परन्तु जब कोई उत्तर नही आया तो उन्होंने बात ही छोड़ दी थी। यह भी कहा कि उनके गुरू ने उपदेश दिया है कि ऐसी परिस्थिति में यदि इस प्रकार की शेष राशि वापस प्राप्त न हो या किसी प्रकार नकारात्मक उत्तर मिले तो ऋणी के प्रति 'भगवान आपको सद्‌बुद्धि दे तथा आपका भला करे' की प्रभु से प्रार्थना करके बात भूल जानी चाहिए। अब क्योंकि आप आईं हो तो शायद 2300 रूपये शेष रहे थे यदि देने हैं तो दे दो। महिलाओं ने घाटी भर तथा पूरे प्रदेश में फैली अशान्ति के कारण राशि चुकता न कर सकने के लिए क्षमा याचना की तथा 2300 रूपये नहीं अपितु 2600 रूपये वास्तविक शेष राशि रही थी का ज्ञान दिलाकर ऋण चुका कर और सामग्री नकद उठा ली और सह्रदय धन्यवाद दे कर चल दीं।

दोनों पक्षों यानि विक्रेता और ग्राहक की उदारता और सत्य निष्ठा को दृष्टिगोचर करके मैं इस अचम्भे में पड़ गया कि क्या आज के इस कलियुग में ऐसे सज्जन भी हैं! विद्यमान हैं! जहाँ भ्रष्टाचार ने चारों ओर वातावरण को दूषित किया हो। जहाँ चारों ओर वातावरण का पानी काई से भरा हो। जहाँ भाई भाई के रक्त का प्यासा हो जहाँ विश्वास शब्द विलीन होता दिखाई देता हों क्या यहाँ ऐसे श्रद्धावान और दयावान सज्जन भी विद्यमान हैं! यहाँ दोनों पक्षों की जीत हुई। दोनों ने एक दूसरे का ह्रदय जीत लिया। यहाँ इस उदाहरण से कश्मीर और करगिल एक दूसरे के अति विश्वसनीय बन गये। दोनों ह्रदयों का प्रसन्नचित पुनः मिलन हुआ। दोनों ओर

आत्मीयता और निर्मलता आ गई। उपरोक्त घटना की प्रत्यक्षता को दृष्टिगत करके सहसा मुझे आठ वर्ष पूर्व की घटी घटना का दृश्य नेत्रों के सम्मुख आया।

दस दिसम्बर 2002, मुझे अपनी धर्मपत्नी समेत दिल्ली से मुरादाबाद एक समीपी–सम्बन्धी के शुभविवाह पर जाने का कार्यक्रम बन गया। विवाह सम्पन्न होने के दूसरे दिन हम दोनों ने एक दूसरे के सामने हरिद्वार जाने का प्रस्ताव रखा। जिसे पारित करके हम हरिद्वार यात्रा के लिये चल दिये। यहाँ पहुँचकर हम तीन दिन रूके तथा इसके अतिरिक्त ऋषिकेश में भी एक रात बिताई। यात्रा का पूर्ण आनन्द लेकर दिवांगत आत्माओं को श्राद्ध आदि द्वारा प्रसन्न करके उनका ऋण से उऋण होने का अनुभव करते हुए, अपने आप में ऐसा हल्कापन अनुभव करते हुए तथा देवी देवताओं का आशीर्वाद पाकर हम एक राहत के साथ दिल्ली ट्रेन द्वारा लौटे। हमारी ट्रेन नई दिल्ली रेलवे स्टेशन रात साढ़ें नौ बजे पहुँची। स्टेशन के बाहरी गेट पर पहुँचते ही हमारे सामने तीन मूर्तियों का एक परिवार खड़ा हो गया। करीब पचास वर्ष का सूट टाई से सुसज्जित एक पुरूष, इसके कुछ वर्ष कम आयु की साड़ी पहने, बगल में पर्स थमाये एक महिला तथा उनका दस वर्ष का वेशभूषा से सज्जित एक पुत्र। पुरूष ने आकर बोलचाल आरम्भ की तथा कुछ रूपये देने की याचना की। महिला जो याचक की पत्नी थी, ने कहा कि उनकी अटैची इसी स्टेशन पर चोरी हो गयी। दम्पति बाथरूम गये थे पुत्र को अटैची का ध्यान रखने के लिये कहा था पर उसका ध्यान इधर–उधर भटक गया और अटैची गायब हो गयी। उनकी वेशभूषा तथा बोलचाल को देखकर हम तरस खाने लगे। मन में उनके प्रति दया आई, पर दूसरी ओर मैं दिल ही दिल में सोचने लगा कि क्या यह लोग सत्य बोलते हैं या हमें परदेशी समझकर रात के समय हमारे सम्मुख झूठा बहाना बनाकर हमारी जेब टटोलने

आये हैं। कुछ अधिक गहराई में न जाना ही मैंने उचित समझा तथा यही सोचा कि हो सकता है यह बेचारे सचमुच ही लूट लिये गये हों वरना हमारे सामने ऐसी याचना क्यों करते! इसलिये इनकी सहायता करना उचित है। बातो–बातो में उनसे यह जान पड़ा कि कोलकाता में वे एक प्राथमिक स्कूल चलाते हैं। क्योंकि मैं भी पेशे से एक अध्यापक हूँ तो ऐसा सुनकर मेरे मन में सांत्वना और शान्ति का अनुभव हुआ। वाह रे ईश्वर एक अध्यापक को दूसरे अध्यापक के पास भेजना उचित समझा। यह कैसी लीला है तुम्हारी! यह कैसा मेल! पेशे का इतना गहरा सम्बन्ध! अब सहायता करना मैंने अपना परम धर्म ही नही अपितु अनिवार्य समझा। अपनी पत्नी की ओर देखते ही संकेत से मैंन स्वीकृति भी पा ली।

मैं अपनी जेबों को टटोलने लगा। जिनमें से मुझे सौ के चार नोट, पचास का एक नोट तथा कुछ सिक्के प्राप्त हुए। मैंने सौ रूपयों के तीन नोट और पचास का एक नोट पुरूष के हाथ थमाये और शेष अपने निवास स्थान दिल्ली साऊथ एक्स पार्ट–एक तक ऑटो खर्चे के लिए रखे। अपने मन में स्वयं को कोसने लगा कि मेरे पास जेब में अधिक राशि क्यों नही है ताकि मैं इनकी पूरी प्रकार रेल टिकट के खर्चे की सहायता कर सकता। इस ग्लानि को दम्पति के सम्मुख प्रकट करके हमने विदा माँगी। वे दूसरी ओर रेलवे स्टेशन की ओर चल दिये। मैं उनकी ओर दृष्टि से ओझल होने तक एकटकी लगाकर देखता रहा। इसका पूर्ण रूप से आज भी स्मरण मन में आता है। विदा के समय पुरूष ने मुझसे मेरा पता माँगने का बड़ा हठ किया था ताकि वह हमारा पैसा वापिस भेज सके। बड़ी झिझक के साथ मैंने अपना पता दिया था पर ग्लानि यही थी कि हम इनकी वापसी यात्रा के लिये टिकटों की पूरी राशि का प्रबन्ध न कर सके। इन्हें बाकि राशि के लिये अब दूसरों के पास पुनः हाथ फैलाने पड़ेंगे इसके

अतिरिक्त कोलकाता पहुँचने तक इनके खान–पान का क्या होगा। बेचारे शायद भूखे रहेंगें इन्हीं विचारों में डूबे हम अपने निवास स्थान ऑटो द्वारा पहुँचे।

इस घटना को आज तक आठ वर्ष होने को आये हैं परन्तु आज तक उनका कोई सन्देश नही आया। हमारा पता तो उसने अच्छी प्रकार अपनी डायरी में सुरक्षित तौर से लिखा था। उनकी छवि जब भी मेरे सामने आती है तो प्रश्न यह नही उठता है कि उस पुरूष ने मेरे पैसे नही लौटाये; प्रश्न यह अवश्य उठता है कि क्या वे सच्चे रूप में सहायता करने योग्य पात्र थे या अपना नकली रूप बनाकर हमारी जेब खाली करने आये थे।

मैंने अपना कर्तव्य जानकर या ईश्वर की परीक्षा समझकर उसे पैसे तो दिये पर यह "**दिल बहलाने को गालिब यह ख्याल भी अच्छा है**" के समान हुआ पर हम दो पक्षों में कौन जीता और कौन हारा! यह प्रश्न तो मानवी स्वभाव हेतु उठता है मन में।
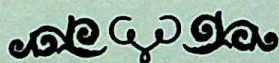
22

कैसे भी हो, नाम चलता रहे ।

संसार के कण–कण में नाम है। आकाश के तारे–सितारे नामों से जाने जाते हैं। पृथ्वी भिन्न–भिन्न, देशों के नामों में बटी हुई है। नदियों, सागरों का जल नामों में बटा है। मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, वनस्पति वायु सबों के नाम दिये गये हैं। दिन, सप्ताह, मास तथा वर्ष भी उनके नामों से जाने जाते हैं। सागर की तह (तल) में जाइये, वहाँ का हरा भरा कोष भी नामों में बटा है। भिन्न–भिन्न आकृति; भिन्न–भिन्न नाम। यहाँ तक कि लिंगों में बटे हुए– बंधे हुए, चारो ओर नाम। किसी से सम्बोधित होना है तो उसके नाम से होना है। जल में नाम, थल पर नाम, आकाश में नाम– स्वर्ग, नरक, पाताल में नाम। यहाँ तक कि एक ईश्वर के भी भिन्न–भिन्न नाम। मनुष्य के घर का एक नाम– ससुराल का दूसरा नाम। महिला के मायके का एक नाम–ससुराल का दूसरा नाम–बच्चों, बूढ़ों युवकों के भिन्न नाम।

नाम का मोह किसे नही? जिन्हें कुछ न चाहिये, उन्हें भी नाम तो चाहिये! यहाँ तक कि एक नन्हा बच्चा भी चाहता, उसे पुकारा जाय उसके मन–पसन्द नाम से! धन–दौलत, रूपया, पैसा कुछ न मिले, पर नाम मिले! 'नाम' शब्द की लोगों में बेचैनी देखने में आती है। मेरा नाम रहे! केवल मेरा नाम हो! इसी 'नाम' की बेचैनी। इसी की उत्सुकता, इसी में व्यस्त। लोग नाम पाने के लिए क्या–क्या नही करते? बड़े–बड़े स्कूल, कॉलेज, अस्पताल बनाते हैं। कुआँ, बावली, प्याऊ बनाते हैं। मन्दिर, धर्मशाला बनाकर मुख्य द्वार पर अपना

पूरा परिचय समेत पट खड़ा कर देते हैं। उच्च पदाधिकारियों से शिलान्यास करवाकर उनसे बड़े–बड़े प्रशंसा भरे भाषण पढ़वाते हैं। चारों ओर प्रसिद्धि फैलती है, नाम निकलता है।

मोह है, केवल मेरा नाम हो! मेरा नाम रहे। मन कितना भी मैला क्यों न हो; पर मुँह में राम–राम बगल में छुरी। आपके प्रति हर समय आपकी प्रशंसा तथा हाथ जोड़कर सहानुभूति जताते रहेंगे। नाम रहे; तो बस सब कुछ मिले!

वंश को आगे चलाने के लिये अपना पुत्र न जन्मे तो गोद लाओ। गोद न मिले तो अस्पताल, मन्दिर, मस्जिद, सड़क से चोरी लाओ। ऐसे भी न मिले तो कितनी भी रिश्वत देकर लाओ। सीधे न मिले तो उल्टी अगुंली करके लाओ। गुप्त रूप से प्राप्त करो या खुले आम लाओ। पर लाओ तो सही। नाम रखना है अपना।

अपने नाम को रखने हेतु मनुष्य क्या–क्या करते हैं। इसे व्यवहारिक बनाने के लिए क्या–क्या सूझ बैठते हैं। समाचार पत्रों में नाम निकालते हैं। विज्ञापन छपवाते हैं टी.वी. की भिन्न–भिन्न प्रणालियों का सहारा लेते हैं क्यों न करें! ऐसी परम्परा तो पीढ़ियों से चलती आ रही है। इतिहास रचे गये हैं तो नाम पर ही। किसी का कार्यकाल दर्शाया गया हो तो उसके नाम से ही। राजा महाराजा प्रसिद्ध हुए उनके नामों से ही।

मनुष्य में कितना लोभ है, उसका नाम रहे! जीते जी कर भी तथा मरकर भी। यही विचार मेरे मस्तिष्क में बार–बार आ रहा था। इस विचार में मगन मैं एक दिवस प्रातः सड़क पर टहल रहा था, सड़क किनारे एक कब्रिस्तान था। मेरी दृष्टि भरे कब्रिस्तान की कब्रों पर पड़ी। प्रति एक पर दिवांगत के नाम–पता लिखे गये थे। यहाँ तक इस संसार में पधारने

और उस संसार को सिधारने यानि ईश्वर को प्यारा होने की भी तिथि सुलेख में अंकित थी।

मैंने सोचा वाह रे यार (मित्र) मरकर भी नाम का लोभ। मुंह से एकदम एक कवि की यह पंक्ति निकल पड़ीः–

"है संगमज़ार पर भी तेरा नाम रवाँ,

मरकर भी उमेदें जिंदगानी न गयी।"

थोड़ा आगे चला, एक धर्मशाला देखी जिसके मुख्य द्वार पर एक सुसज्जित संगमरमर की मूर्ति विद्यमान पाई। नाम, पता नीचे लिखा था। सोचा कैसा दानी था यह निर्माण कर्ता! प्रशंसनीय है। थोड़ा ही आगे चला तो एक भव्य मन्दिर के दर्शन हुए। जिज्ञासा हुई मन्दिर के भीतर जाकर एकान्त में ईश्वर का ध्यान धरूँ। पर भीतर जाकर क्या देखा–मूर्तियाँ भिन्न भिन्न नामों से सुसज्जित थीं। प्रति एक पर सुनहरी शब्दों में दानी का नाम तथा कारोबार (व्यवसाय) फैक्ट्री पता समेत।

मन ने सोचा वाह रे भगवान। अपने व्यवसाय की बढ़ोतरी के लिए तुम्हारा भी दान हुआ! तुम्हें भी दान में दिया गया अपने लाभ के लिए। यह मास था निर्वाचन का। देश की लोकसभा के निर्वाचन का। नगर में चारों ओर धूमधाम, जलसे, जलूस, नाच–गाने, बच्चों के नृत्य, बड़े वृद्धजनों तथा युवक गण की मगन रूपी नृत्य–संगीत टोलियां, ढोल–बाजे, शामियाने, पार्टी ध्वज, पार्टी की सुसज्जित मार्गो पर ड्योढ़ियां–मानों शहर में कई प्रतिष्ठित बारातियों का स्वागत करना हो। नर–नारी सब अपने–अपने निर्वाचन क्षेत्र में मस्त थे।

मैं अस्वस्थ था, पर अपने घनिष्ठ मित्र के बाध्य करने पर एक पार्टी का भाषण सुनने गया। क्या देखा! 85–90 वर्ष

आयु की दो मूर्तियाँ अपनी पार्टी का ध्वज हाथ में थामे स्टेज पर दो कुर्सियों पर कब्ज़ा जमाये इस प्रकार बैठे थे– न हिले न डुले। एक महाशय अर्ध–निंद्रा में एक हाथ से अपनी ढील–ढोल पगड़ी को नीचे उतरते अनुभव करते ही ऊपर पुनः सिर की ओर सरका देते तथा दूसरे हाथ से लम्बी छड़ी थामे यानि अपने बुढ़ापा के सहारे को थामे पुनः निंद्रा में लीन हो जाते तथा दूसरे श्रीमान खर्राटों में इतने लीन थे कि कौन स्टेज पर पधारा, कौन–कौन से तीर मारने की प्रतिज्ञा करके चला गया, इसकी इन्हें कुछ सुध–बुध नही। जब अपनी बारी आयी तो दूसरों के जगाने पर अपने सहायक चम्चों के कंधों का सहारा लेकर स्टेज पर पधारे तो आयु भर के रटे शब्दों का खूब बखान किया। धन्य हैं; ऐसे लोभी महापुरूष–एक टाँग कब्र में परन्तु दूसरी स्टेज धारण की हुई। जान जाय पर, कुर्सी न जाय। क्यों देंगें युवक गण को उत्थान का अवसर? कैसे सहेंगे उनका फलता–फुलता यौवन–काल देखना! कुर्सी से चिपके रहने की शपथ दिल में उसी दिन खायी थी जिस दिन कथित देश सेवा करने की शपथ ली थी। वचन दिया था अपने लोकतंत्र भारत को स्वच्छता की और सदाचार की, ईमानदारी की। ऐसे कथित ईमानदार नेताओं की देशी–विदेशी बैंक राशि और चलित–अचलित सम्पति की सूचना पढ़कर कौन सिखा सके इन्हें स्व. श्री लालबहादूर शास्त्री के सिद्धान्तों का पाठ! जिनकी जेब से अन्तिम बार केवल तीन रूपये निकले थे। कौन सिखा सकेगा इन्हें उन महान त्यागी नेताओं के जीवन–सिद्धान्तों का पाठ जिन्होंने अपनी निजी तथा अपनी पूर्वजों की सम्पति देश को समर्पित की। अपने देश पर अपने जीवन का बलिदान दिया।

दोनों के मोह में क्या अन्तर है ऐसा विचारते श्री भगवतीचरण वर्मा जी की इस पंक्ति का स्मरण आता है:–

'ओ रज–कण के ढेर, तुम्हारा है विचित्र इतिहास।

23

नही भूलता हूँ:- वह पतझड़।

अक्टूबर मास सन् 1947 की बात है। मैं लगभग चार वर्ष की आयु का था। पैरों में नया सफेद रंग का फ्लीट (कपड़े/रबड़ का बना जूता) पहने शायद मोज़े के बिना, हाथ में दो अन्नी लिये (उस समय के दो आने का एक सिक्का, सोलह आने का एक रूपया बनता था) अपने आप से अठ्खेलियां करता बारामुला कश्मीर के अपने पैतृक मकान की 'कॉनी' में (पुराने मकानों में ऊपर बड़ा कमरा होता था जहां एक या दो ओर किचन आदि भी हुआ करता था जो 'कॉनी' कश्मीरी में कहलाता था)। गर्मियों में प्रायः सब सदस्यों का ठंडी-ठंडी हवा प्राप्त करने के लिए यहीं निवास होता था और सर्दियों के मौसम में परिवार के सदस्य प्रायः मकान के निचले भाग में गर्मी प्राप्ति के लिए निवास किया करते थे जिसे 'वोट' कहते थे। खाना-पीना यहीं हुआ करता था। मैं इधर-उधर नाचता था। अकेला अपने आपसे ही खेल रहा था। नये जूते की ओर देखकर शायद फूला न समाता था वह भी जब हाथ में दो अन्नी हो। 'कॉनी' में धूप भी थी और समय मध्याह्न का था। घर के अन्य सदस्य कहां थे पूर्णतः याद नही है।

पर दूसरे दिन याद है इसी मध्याह्न में मेरी माँ मेरा हाथ थामे कई नर-नारियों के संग, मुझे एक पहाड़ी पर चढ़ा रही थी। सब चिन्तामुख, निस्तब्धता से पर्वतारोहन करते थे। संगियों में प्रायः मेरी माँ के मायके वाले थे। क्योंकि 'बीच मार्ग एक पुरूष जो ऊपर पहाड़ से उतर रहा था हमें मिला और

मेरी माँ से बातें करने लगा। कुछ वर्ष बाद जब इस पुरूष के पुनः दर्शन हुए तो मालूम हुआ यह मेरे बड़े मामा जी थे।'

बात यह थी कि इस मास यानि अक्टूबर 1947 में पाकिस्तान ने कश्मीर को हड़पने के लिए कबाईली फौज भेजी थी। ऊड़ी के मार्ग से घुसकर उन्होंने बारमुला में चारों ओर हाहाकार, लूट मार त्राहि–त्राहि मचा रखी थी। 'काफिर' मानकर हिन्दुओं और सरदारों का खुलेआम यहां कत्ल होता था। सोना प्राप्त करने की लालसा से पीतल को भी सोना मानकर चारों ओर लूटमार मचा रखी थी। चारों ओर सन्नाटा, आग तथा हाहाकार।

हम चढ़ रहे थे अपने आप को छिपाने के लिये, अपनी जान बचाने के लिये। पहाड़ी के बीच एक गाँव बसा था जिसका नाम 'व्योनकोर' था। यहां हिन्दुओं के कुछ घर बसा करते थे जिनमें मेरी माँ के ननिहाल वाले भी थे। यहीं शरणार्थी बनना था। शायद इसलिये कि कबाईली वहां नही आयेंगे और हम बच जायेंगे। हम गाँव में ऐसे–वैसे पहुँच गये। देखा इनके 6–7 मकान हैं क्योंकि मेरी माँ के पाँच मामा जी थे इसलिये सब परिवारों के लिये घर–मकानों का होना आवश्यक तथा अनिवार्य भी था। कुछ एक दो मकान सम्भवतः नये बने थे। प्रांगण खुला था। गाँव का स्थान, यहां भूमि का अभाव कहाँ ? हमें नये मकान में बिठाया गया। ऐसा लगता था कि मकान की सीढ़ी एक दिवस ही पहले बनी थी। सारा दृश्य नेत्रों के सामने आता है।

'व्योनकोर' नामक गाँव झेलम नदी की दायी ओर बीच बारामुला–कश्मीर का पुल पार करके एक पहाड़ी पर आता है। इसकी बायीं ओर एक ऊँचा पर्वत 'गोसानी टेंग' कहलाता है। पर्वत पर चढ़कर बीच पर्वत के वन में 'भैरव जी' के मन्दिर के दर्शन करने होते थे। जहां थकान भी मिटती

थी। फिर पर्वत की चोटी पर पहुँचकर एक खुला प्रांगण मिलता है जिसमें राम जी का मंदिर और एक धर्मशाला भी हुआ करती थी। प्रांगण में राम कुण्ड, सीता कुण्ड, लक्ष्मण कुण्ड, हनुमान कुण्ड आदि के भी दर्शन होते थे। एक जन श्रुति है कि राम जी ने यहाँ एक बड़ा यज्ञ रचाया है इसलिये इस पर्वत पर धूप–दीप, अगरबत्ती, गुगल, तिल, घी आदि की सुगन्ध का उन दिनों भी अनुभव होता था जब मैंने 12–13 वर्ष की आयु में यहां इस पवित्र स्थान के दर्शन किये थे। सब अपनी सुन्दरता की गरिमा में शोभायमान थे।

'व्योनकोर' में तो शरण मिली, पर दुर्भाग्य से यहां भी छुटकारा न मिला। कुछ दिनों पश्चात यहां भी कबाईली बन्दूकें तान आन पड़े। हमें बन्दी बनाया गया। संध्या समय एक स्थान पर हमें एकत्र किया गया। बीच हमारे एक सफेद रंग की बडी चादर बिछायी गयी। घोषणा हुई "जिसके पास जो है चादर की नज़र करें।" सारे क्रमशः उठते गये अपनी समेटी पूँजी का, अपने तथा अपने पूर्वजों की सम्पत्ति जो रूपये पैसे सोना चाँदी के रूप में अपना घर बार छोड़ अपनी जान को हथेली पर रखकर लाये थे, सब इस सफेद चादर की भेंट, करते गये। आह! भरे स्वर, हताश, पुनः अपना स्थान ग्रहण करते गये। मेरी माँ भी उठी; सब सोने–चाँदी को, जो अपनी जान हथेली पर रखकर एक सुन्दर लकड़ी के डिब्बे में लेकर अब तक अपने पास छिपाये बैठी थी, अश्रु भरे नेत्रों से चादर की नज़र कर आई। रोती आह भरती फिर आयी मेरा हाथ किसी के देखने बिना पकड़ लिया। सोचा होगा मेरे बच्चे जियें, काफी है। मेरे साथ मेरा बड़ा भाई भी था वह किसके पास था याद नही आ रहा है। मैं सब देखता रहा। अवाक् अपनी उस दो अन्नी को जो यहाँ भी साथ लाया था अपनी फ्लीट (जूते) में छिपाता रहा। फ्लीट जूता नये से पुराना अब बन गया था पर अपनी 'दो अन्नी' को अपनी आन मानकर मैं अपने में

छिपाये बैठा रहा। किसी को पता नही लगने दिया कि इसमें आग्रह है, एक हठ है, स्वाभिमान है। आभारी हूँ उस फ्लीट जूते का जिसने मेरी आन रखी वरना क्या पता यदि कबाईलियों को थोड़ी भी आशंका होती तो मेरी नन्ही जान कहां बचती। मेरी दो–अन्नी भी बच गयी।

सब की बारी समाप्त हुई। कबाईली आपस में परामर्श करने लगे। शायद सन्तुष्टि मिली थी। बन्दूकें ताने चादर समेटने लगे। हमारे भाग्यवश किसी का कत्ल किये बिना आगे का मार्ग लिया। बन्धक सारे रोते रहें बिलखते रहे। सब स्थान निस्तब्धता थी। रात्रि ने भी अपना आगमन किया उसे भी अब अपना डेरा डालना था तभी सबको अपने घर–अपने स्थान पर लौटने का परामर्श दिया। सब अपने कमरों में 'जान बची लाखों पाये' का धन्यवाद देते–देते विदा हुए।

कुछ दिन पश्चातः– वही जंगल, वही पतझड़, वही लाल पीले पत्ते, वही वातावरण। दिन में सारे मिल–बैठे भाग्य को कोस रहे थे सहसा मैं माँ की गोद में बैठा बेहोश पड़ गया था। सम्भवतः मेरी माँ की चीख निकल पड़ी होगी। चारों ओर सन्नाटा छा गया होगा। इस संकट की घड़ी में ऐसी परीक्षा भी आनी थी लोग यही सोचतें रहे होंगे। मेरी आँख खुली। क्या देखता हूँ; कुछ–कुछ याद हैः– एक युवक जो मेरी उस बाल्यावस्था में मेरे लिये एक अनजान व्यक्ति थे, परन्तु थे वास्तव में मेरे मौसा जी, कहीं से अपने दोनों हाथों में पानी समेटे ला–ला कर मुझे पिला रहे हैं और एक युवक मुझे कुछ खिलाने का यत्न कर रहा है मुझे वे चबा–चबा कर वृक्ष के पतझड़ के पीले पत्ते खिलाने का यत्न कर रहे थे कि सहसा देवयोग से आकाश से किसी कौवे की चोंच से एक भूटा (मक्के की छली) छूट गया जो मेरे बिल्कुल निकट जा गिरा था अब वही मुझे भोजन के तौर चबा–चबा कर खिलाया जा रहा था। मेरे शरीर में पुनः जान आ गयी थी। देवी कृपा से

कौवे द्वारा मुझे जीवनदान मिल गया था। सन्नाटे मे प्रकाश ने अपनी किरण दिखाकर निराशा में आशा बाँधी थी। सच हैः–

"जिसको राखै साइयां मार सकै न कोई।

बाल न बाँका करि सकै चाहे जग बेरी होइ।।"

बारामुला जल रहा था। कबाईलियों के लूट खसोट ने अपनी चर्म सीमा पकड़ी थी। वे आगे–आगे चलकर गाँव पर गाँव नष्ट करने पर तुले हुए थे। श्रीनगर पहुँचने की अनथक कोशिश में लगे थे जिसके प्रयास में वह बारामुला निवासी श्री मुहम्मद मकबूल शीरवानी के सम्पर्क में आये। पर उनको क्या पता था कि कश्मीर का एक सपूत हज़ारों आक्रमण कारियों को गुमराह कर सकता हैं।

हम अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हुए श्रद्धाँजली अर्पित करते हैं इस कश्मीर के बारामुला निवासी देश भक्त स्व. श्री मुहम्मद मकबूल शीरवानी के प्रति; जो अपनी अन्तिम श्वास रहने तक कबाईलियों का मार्ग श्रीनगर पहुँचाने में टालता रहा। यदि ये ऐसी सूझ–बूझ से अपना मस्तिष्क न चलाते तो श्रीनगर भी कबाईलियों की लपेट में आया होता। यह महान देश–भक्त आक्रमणकारियों का मार्ग कई दिन टालता रहा। उनको इधर–उधर मार्ग से भटकाता रहा और अन्त में कबाईली जब जान गये कि वह गुमराह किये गये हैं तो श्री शीरवानी के शरीर को बारामुला के चौक में गोलियों से निर्दयता से छलनी कर दिया।

ऐसे कई अन्य देश–भक्तों, देश सेनानियों के साथ–साथ हम आभार तथा श्रद्धाँजली प्रकट करते हैं शहीद मेजर सोमनाथ को, जो अपनी अल्प संख्यक फौजी टोली के साथ अन्तिम श्वास तक श्रीनगर वायु अड्डा बचाते रहे। साहस के साथ अन्तिम श्वास तक अपनी टोली के लिए प्रेरणा बनते रहे जब तक भारती फौज ने दिल्ली से आकर

कबाईलियों को वापिस पाकिस्तान धकेलकर उनके छक्के न छुड़ाये। देश सदा गर्व करेगा अपने ऐसे देश भक्तों पर चाहे वे किस टोली के हों, किस रेजिमेन्ट के हों, किस मार्ग के हों, कवि हों–गायक हों, छात्र हों, अध्यापक हों, नेता हों या किसी अन्य व्यवसाय के हों। सारे गर्व से कहलायेंगे देश–भक्त सेनानी और देश करेगा सर्वदा नाज इन शहीदों पर।

भारतीय सेना के कदम कश्मीर में पड़ते ही उनकी सक्रिय सतर्कता से कबाईली वापस भागने को विवश हुए। कश्मीर की स्थिति में सुधार आने लगा। हम जैसे शरणार्थियों ने अपने घर–आशियानों की ओर रूख किया। मुझ चार वर्ष के बच्चे को भी लाया गया किसी आशियाने में। अपने घर से कुछ दूरी पर अपने ननिहाल के जलाये गये घर के निकट जहाँ मैंने अपने आपको पाया एक बड़े कमरे में। मुझे पूर्णतः याद है कमरा बड़ा था बिजली से पूरा प्रकाशित था। संध्या का समय था। एक कोने में मेवों की कई पेटियाँ थी जिनसे सेब आदि निकाल कर हम में बाँटा जा रहा था जो उस रात के लिये हमारा भोजन था। यहीं हमारा मिलन हुआ अपने पिता जी और चाचा जी से। ये रहे थे हमसे जुदा–पृथक अपने घर आशियाना बचाने–देख भाल करने अपनी जान हथेली पर रखकर। घर थे दो, यानि हमारे दो मकान थे। दोनों देवी कृपा से बच गये थे लेकिन पिता और चाचा पर क्या बीती थी। त्राहि–त्राहि करते थे सुनकर और सुनाकर। घास के भीतर आठ दिन रखा था अपने एक शुभचिन्तक मुसलमान पड़ोसी ने अपने घर, अपनी जान पर खेलकर। पड़ोसी का कर्तव्य निभाया था।

दृढ़ विश्वास है इसी प्रकार के व्यवहार का प्रमाण दिया होगा 'व्योनकोर' गाँव के मुसलमान पड़ोसियों ने। वरना शरणार्थी कैसे जीवित रह सकते एक अनजान स्थान इतने दिन? एक दूसरे से भ्रातृभाव का व्यवहार रखना, समय पर

सहानुभूति से सहायक बनना, मज़हब का कोई भेदभाव न रखना ही 'कश्मीरियत' कहलाता है। ऐसी परीक्षा में कश्मीरी सदैव खरे उतरे हैं। सन् 1971 के पाकिस्तान युद्ध की सूचना पहले गुजर बसर वालों ने ही भारतीय सेना तक पहुँचाई थी। यही है कश्मीरियत, यही है देश प्रेम।

अन्त में मेरी दो अन्नी का क्या हुआ? हमारा क्या हुआ? भाग्य ने कौन से करवट बदले। क्या हम अपने घर जहाँ दो मकान थे पुनः निवास करने लगे या नही! कुछ याद नही है। पर पुनः जब होश पूर्णतः सम्भाला तो मैंने अपने आपको अपने माता–पिता, भाई, चाचा आदि समेत पैतृक के एक नातेदार के घर में पाया यह था बारामुला से 50 मील दूर 'रैणावारी–श्रीनगर' का स्थान। घर–परिवार वालों ने यहाँ इस स्थान पलायन किया था। मेरी पढ़ाई भी यहीं से आरम्भ हुई।

पढ़ाई करने के कुछ ही दिन पश्चात् नौकरी ऐसी मिली कि वर्ष में पाँच–छः बार पर्वतारोहन करना पड़ता था। विशेषतः पतझड़ के ऋतु में। ज्यों ही लाल–पीले पत्तों पर दृष्टि पडती; सारा बचपन सामने खड़ा हो जाता। 'व्योनकोर' वन का प्रत्यक्ष रूप नेत्रों के सामने खडा हो जाता। सब कटे दिन पुनः याद आते जितने याद थे। एक आह निकलती! पर सदा शान्त रहकर लाल–पीले पत्तों का आलिंगन करके उनका अभिनन्दन करता हुआ आगे पग बढ़ाता।

आज पैंसठ वर्ष हुए बीते हुए बाल्यकाल को। सेवा निवृत भी हुआ हूँ, पर वह पतझड़ प्रायः नेत्रों के सामने खड़ा हो जाता है। याद दिलाता है बीते दिनों की–बीते बाल्यकाल की। अभिलाषा है अपनों से, परायों से, सब एक दूसरे के प्रति भ्रातृभाव का व्यवहार करें। संकट के समय एक दूसरे के काम आयें। समय एक स्थान टिका नही रहता। परिवर्तन प्रकृति का

नियम है। रहती है यादें, विशेषतः बचपन की। इसीलिए मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ अपनी लिखित यह पुस्तक लेकरः–

"मेरी यादें"।

धन्यवाद।
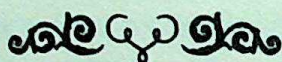
24

"हैलो हाई। बाई। अपना ध्यान रखना।"

याद आ रहा है आज से छः दशक पूर्व तक भारत के प्रायः प्रति घर के सारे सदस्य किस प्रकार एक परिवार बनकर रहते थे। प्रायः सभी घरों के मुख्य एक दो सदस्य कमाते थे तथा उन्हीं की आय से सारा घर परिवार चलता था। रिश्तेदारी–विवाह आदि के व्यय अच्छी तरह से चलते थे। महिलायें आमतौर अनपढ़ होकर घर के कार्य को सम्भालने में लगी रहतीं। अबलाओं को न दिन का पता चलता था न रात का। घर गृहस्थी में इतना व्यस्त रहती, कि दिन का भोजन चार–पाँच बजे तथा रात का ग्यारह के पश्चात भाग्य में लिखा होता था। कई घरों में परिवार के सदस्यों की संख्या इतनी होती कि घर में चूल्हा बारह घंटे जला रहता था। दादा, दादी, माता, पिता, चाचे, चाचियाँ, पुत्री, भाई, बहन पोते, पोतियाँ यहाँ तक कि विवाहित पुत्रियों की सन्तान भी ननिहाल में ही पलते थे। एक सम्पन्न परिवार होता था यह। मध्याह्न तथा रात्रि के भोजन समय पर भोजनालय खचा खच, भरा जाता था जहाँ बच्चों की चीख–पुकार धक्कम–धक्का, एक से चिढ़ना, दूसरे को चिढ़ाना, या चिढ़वाना जैसे दृश्य प्रतिदिन देखने को मिलते थे। एक का दुख दूसरे का दुख होता था और एक का सुख दूसरे का सुख होता था। सब कुछ परस्पर बाँटा जाता था। ऐसा होता था यह एक सुखी सम्पन्न परिवार। इस परिवार में प्रातः काल जागकर बड़ों के चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया

जाता था और छोटों में स्नेह बाँटा जाता था। बड़ों का आशीर्वाद पाकर एक दूसरे के प्रति आदर–सत्कार और स्नेह–प्रेम होता। यहां इस व्यवहार में श्रेय होता था। यह एक सभ्य परिवार हुआ करता था।

यह उस समय का वातावरण था जब बाज़ार में माप–तोल में मील, फरलाँग, गज़, फुट, इंच तथा खरवार, मन, त्रक, सेर, पाव, छुटाँग, तोला, माशा आदि प्रचलित था। पर धीरे–धीरे यह सब लुप्त हो गये। कहावतें (गाथायें) रह गयी नयी पीढ़ियों के लिए। चाँदी के रूपयों के बड़े–बड़े आकार के गोल–गोल सिक्के, ताँबे के बड़े–बड़े एक पैसे वाले सिक्के, जिनके कईयों के बीच में बड़े–बड़े दायरे के छेद भी हुआ करते थे। चौ–अन्नियाँ, आठ–अन्नियाँ, दो अन्नियाँ, टके सब गायब। सब नेत्रों से ओझल। अब बाज़ार के लेन–देन में, पारस्परिक लेन–देन में नये आकार के सिक्कों, रूपयो ने, किलोमीटर, लीटर, किलोग्राम आदि ने जन्म लिया है।

जहाँ सरकार ने दिन रात के परिश्रम से इतना परिवर्तन लाया वहाँ उसी सरकार की दृष्टि इस सम्पन्न परिवार से भला क्यों टलती। यहाँ भी परिवर्तन आरम्भ हुआ। नाम दिया गया–'परिवार नियोजन।' करो जी परिवार में कमी। रखो जी बच्चे कम। सोचों जी भविष्य अपना और देश का। हो गया परिवार नियोजन चालू। यहाँ भी 'लुप्त' शब्द ने जोर पकड़ा। 'परिवार नियोजन' इतना सफल कि चारों ओर सरकार प्रसन्न। सरकारी अस्पताल बुक। प्राइवेट अस्पताल बुक। डॉक्टर प्रसन्न। नियोजक माला माल। दम्पतियों ने तो दो बच्चों से अधिक बच्चे न रखने की ठान ही ली। कईयों ने एक ही सन्तान रखने की शपथ ली। सोंचा भी नही उनके अपने भविष्य का क्या होगा? उनके बुढ़ापे का सहारा कौन होगा? ठान ली तो ठान ली। क्यों कान देते किसी के परामर्श पर अच्छे सुझावे पर! भला इस कमी को, इस रिवल्यूशन को

देखकर दादा–दादाी जी कहां रहते! परदादा–परदादी की बात ही नही रही। वे बेचारे शीघ्र–शीघ्र अपना बिस्तर गोल करने के बिना ही संसार से उठ गये। ऐसा देखकर दादा–दादी जी भी अपने नये मार्ग की खोज में निकले। समय की नज़ाकत को देखने में भला चाचा–चाची, यहां तक नवविवाहित क्यों चूकते! सब ने समय को गनीमत समझा। क्यों सहे किसी की रोक–टोक? क्यों न अपना भविष्य संवारे? क्यों, न अपना तवा स्वयं अलग तपावें? सो, यह भी अलग। सब ने अपना–अपना मार्ग ढूँढा। सब ने "हम दो, हमारे दो" की ठान ली। नाम दिया 'न्यूक्लियर फैमिली', सब स्वतन्त्र। ऐसा परिवर्तन अब देखने को मिलता है कि 'न्यूक्लियर फैमिली' भी अब लुप्त हो रही है। जहां पुत्र–पुत्री का विवाह हुआ। दोनों दूसरे ही दिन माता–पिता से पृथक/दूसरे देश के प्रस्थान की तैयारी में मग्न। कुछ–कुछ परदेश से दो–तीन दिन का अवकाश लेकर आते हैं। विवाह सम्पन्न होते ही प्रस्थान। कहीं–कहीं नव विवाहित में भी पृथकता। कोई अमेरिका में सेवानियुक्त तो दूसरा इंग्लैंड़ में। पतिदेव हैदराबाद तो पत्नी जी इलाहाबाद। केवल अवकाश प्राप्ति पर ही मिलन। कहीं यदि सन्तान हुई तो उसके लिये कहीं दर दर की ठोकरें खाकर हॉस्टल के द्वार खटखटाने। हाँ; मिलन के लिये आसरा है 'मोबाइल फोन' जिस पर होता है मिलन किन शब्दों से–

"हैलो! हाई! बाई! अपना ध्यान रखना।" के शब्दों से।
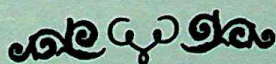
25

अहंकार

ऐ निर्लज्ज अहंकार! तू मुझसे दूर हट। मेरे समीप तनिक भी न आना। मैं तेरी आहट से भी दूर रहना चाहता हूँ। तूने मेरे जीवन में आकर कोई उपकार नही किया अपितु मेरा अपकार ही करता रहा। मेरा पीछा अब छोड़। बहुत सहा मैंने तुम को अब तक। बसकर, अब नही आ मेरे समीप। मैं बाल्यकाल में एक सीधा–साधा बालक था। एक सुपुत्र था। आज्ञाकारी विद्यार्थी था। मुझमें हर प्रकार की सहनशीलता थी। मैं विनम्र था। सब मेरे अपने थे। मैं सब का अपना था। सब मुझे प्रेम से देखते थे। मेरा स्नेह आदर होता था। पड़ोसी अपने बच्चों को मेरा उदाहरण देते थे। मैं कईयों के लिए मार्ग दर्शक था। कईयों का पथ प्रदर्शन करता था। माता–पिता का सुपुत्र था। अपने परिवार का लाड़ला था। एक सुबोध व्यक्ति था। तुम्हारा थोड़ा सा चिह्न भी मुझमें विद्यमान नही था। मैं सर्वथा तुमसे अपरिचित था। मैं अपना सुखद पारिवारिक जीवन व्यतीत करता था। सब नियंत्रण में था। सब अपने बस में था। एक संतुष्ट जीवन था। मेरे परिवार के सब जनों में सुखद ताल–मेल था। अच्छा सम्बन्ध था। मित्रों में; मैं एक अनुभवी, सुशिक्षित, सदाचारी मित्र समझा जाता था। बाल्यकाल से ही मैं प्रेम मार्ग का अनुयायी था। मैंने अपना भक्ति–मार्ग कभी नही त्यागा था। प्रातः सायं ईश्वर की उपासना यथाशक्ति करता था। सबके प्रति सेवा भाव मेरे अन्तः करण में था। जीवन के कार्यकाल में; मैं एक कर्मठ, विदुर आज्ञापालक कर्मचारी माना जाता था। मेरी पदोन्नति होती रहती थी। मेरी

आय भी विधाता ने उचित नियुक्त की थी। सब प्रकार का संतुलन था, संतुष्टि थी।

पर तू पता नही कहां से आ टपका मुझ में। कैसे प्रवास किया मुझमें। कैसे समाया मेरे मस्तिष्क में! मेरे शरीर में क्या आ टपका कि अब मुझ पर राज ही करने लगता है। मेरा सारा चौपट हो रहा है सारा विपरीत होता जा रहा है।

ऐ अहंकार। मैं कहता हूँ मेरे जीवन से दूर हट। जब से तू मेरे जीवन में आया तेरे कारण मैं किसी न किसी प्रकार अपमानित हुआ हूँ। तूने मुझसे वे कार्य कराये जिनका मैंने स्वपन में भी नही सोंचा था। तेरे कारण मुझे वह सुनना पड़ा जिसकी भनक कभी मेरी कानों पर नही पड़ी थी। तेरे कारण, तेरे वश में आकर मेरे द्वारा सत्पुरूषों का तिरस्कार हुआ। शिक्षित होकर भी मैंने अशिक्षित होने का तथा एक गंवार की प्रवृत्ति का प्रमाण दिया। मुझसे माता–पिता गुरूजनों का अपमान हुआ। मैं संतों की सत्वाणी से, उनकी सत्संगति से वंचित हो रहा हूँ।

तेरे कारण मुझमें जात–पात या किसी प्रकार का भेद–भाव, छल–कपट आदि उत्पन्न न हो– तू हट जा मेरे जीवन से। मैं तुम पर तिरस्कार बरसाता हूँ। तुमने ही मुझमें आलस्य उत्पन्न किया। तुमने मुझसे आज्ञाकारी होने के सारे गुण छीन लिये। तुमने मुझमें अहंकार का बीज बोया। तू मुझे असत्य की ओर खींच रहा है। सच्ची हितकर बातें सुनने से दूर भागता जाता हूँ। मुझमें तेरे बसाये अभिमान की दुर्गन्ध आने लगी है। मैं कुसंगति में फंसा जा रहा हूँ। मैंने बड़ों का आदर–सत्कार करना छोड़ ही दिया है। मैं सरल–शीतल हृदय त्यागकर कठोरता की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। जहां गरीब की झोंपड़ी जले वहां से मैं विमुख होता हूँ। जहाँ ईश्वर के प्रवचन

चल रहे हो उस मार्ग जाने का मैं लाभ नही लेता हूँ। वहां जाना समय नष्ट करना समझता हूँ।

मैं सौजन्यता, दया, नम्रता, एकता का पाठ पढ़ाता था। उसका एक–एक शब्द एक–एक पंक्ति मैं भूल बैठा हूँ। अब भविष्य में ऐसा और न हो, तू मेरे मार्ग से हट जा। मेरे मस्तिष्क में और बुरे विचारों की उत्पत्ति न हो तू दूर जा मेरे पथ से तेरे कारण मैं अपना संतुलन खो बैठता हूँ। तुम मुझे दुर्व्यवहार करना सिखाते हो, तुम्हारी सीख हानिकारक हैं तेरी गुलामी में आकर तेरा अनुसरण स्वीकार करके मैं असत्य, दम्भ तथा और कोई कठोर मार्ग न अपनाऊँ–तू हट मेरे मार्ग से। ओझल हो जा इस संसार से। तेरी अब कहीं आवश्यकता नही। कोई तुझे चाहेगा नही। स्वीकारेगा नही। तुम्हें कोई अपने समीप आने नही देगा। सब कतरायेंगे। सब तुमसे दूर भागेंगे। क्योंकि तुमनें आज तक खूब खून बहाया है। तेरे द्वारा भाई–भाई शत्रु बन बैठे।

ऐ अहंकार! मत भूल जाः– तेरे कारण बहन से भाई छुटा। स्त्रियों का सुहाग छिन गया। माता–पिता निःसन्तान बन गये। बच्चों से उनका पिता छिन गया। उनका बालपन उनका लालन पोसन छीन गया। तेरे कारण लाखों तोपें चलीं। लाखों बम, गोलियाँ, मॉर्टर गोले दागे गये, घर लुट गये, जल गये, तेरे ही कारण! अनाथालय, वृद्धाश्रम के द्वार खुल गये। तेरे ही कारण देश नष्ट हुए। तेरे ही कारण राजा रंक बन गये; देखते–देखते।

अपने कारनामे सुने ना; ऐ अहंकार। सुन अब मुझमें सहन शीलता नही रही–तू मेरे पास बिन बुलाया मेहमान आया था चला जा अब मेरे भीतर से। हट जा मेरे मस्तिष्क से हट जा मेरे मार्ग से। मैंने तुमको अच्छी प्रकार पहचान लिया तथा इसी परिणाम पर पहुँचा कि तुम ही एक स्त्रोत हो क्रोध के,

द्वेष के, घृणा के और विनाश के। तुममें है छिपा स्वार्थ का लालच। हे! लालची कुत्ते! मेरी टांग छोड़ दो।

मैं एक सुझाव देता हूँः– जा धरती माँ की शरण जा। वहीं, उसी की गोदी में कुम्भकरण की नींद सो जा। केवल वही शरण देने वाली है क्योंकि वह दयालु, कृपालु धरती माँ है। केवल उसी में सहिष्णुता है। वहीं सिमट जा और अपनी निंद्रा से कभी न जागना।
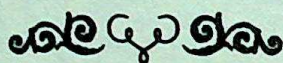
26

गायों की गोष्ठी

एक दिन एक चरागाह में बहुत सी गायें घास चरने निकलीं। हरी–हरी घास चरती, इधर–उधर घूमती रँभाती, जुगाली करती यह गायें अति प्यारी लग रही थीं। वर्षा का मौसम था। आकाश म़ें हल्के–हल्के बादल छाये थे। ठण्डी–ठण्डी वायु चल रही थी। दिन भर घास चरने के पश्चात जब पेट भर गया तो सारी गायें जुगाली करने के लिये पास–पास घेरा बनाकर बैठ गयीं।

सहसा 'श्यामा गाय' की दृष्टि बूढ़ी 'काकी गाय' पर पड़ी जो बड़ी उदास दिख रही थी। वह एक ओर बैठी चुपचाप बड़ी उदास दिख रही थी। श्यामा शीघ्र उसके, पास गयी बोली– 'क्या बात है, काकी' इतनी उदास क्यों हो ? बीमार हो क्या? सभी गायों ने अपनी बातें बंद की और बूढ़ी काकी के पास आकर बैठ गईं।

बूढ़ी काकी ने सिर ऊपर उठाया और कहने लगी 'बच्चियो! तुम्हें क्या बताऊँ! अब मैं बूढ़ी होती जा रही हूँ। इसलिये स्वामी को दूध नही दे पाती। इस कारण मैं उनके लिए बेकार हो गयी हूँ। वे मुझे बुरा भला कहते रहते हैं और हमेशा पीटते रहते हैं। दुत्कारते हैं। मुझे ड़र है कि कहीं वे मुझे किसी कसाई को न दे दें, मैं भगवान से प्रतिक्षण बस अपनी मौत की कामना करती हूँ।

यह सुनकर सब गाये क्रोधित हो उठीं और अपने सींगों को ज़ोर से हिलाती हुई बोलीं–ये मनुष्य ऐसे ही स्वार्थी हैं। देखो तुम्हारे मालिक को शर्म नही आती हैं वह यह नही सोचता कि उसके बच्चे तुम्हारे दूध से ही इतने हृष्ट–पुष्ट बन बैठे हैं– वे ही नही, स्वयं दोनों पति–पत्नी तुम्हारा दूध पीकर ही इतने तगड़े बन गये हैं। अब उन्हें तुम्हारी आयु का विचार करना चाहिए। तुमने आयु भर उनकी सेवा की है अब तुम्हें सादर आराम करने को कहना चाहिए, न कि दुत्कारना चाहिए।

रीता गाय बोली– 'मैं तो केवल एक बात उनसे पूछती हूँ। जब उनके माता–पिता बूढ़े तथा अनुपयोगी हो जायेंगे तो क्या वे उन्हें भी ऐसे ही दुत्कारेंगे और कसाई को पकड़ा देंगे। 'यह गौर करने की बात है।" श्यामा ने कहा।

पीता गाय बोली– 'सखियो। मैंने सुना है कि पुराने समय हज़ारों वर्ष पहले मनुष्य हमारी बहुत इज्ज़त करते थे। वे हमें 'माँ' कहकर पुकारते थे। हमारा बहुत ख्याल रखते थे। हमें प्रतिदिन नहलाते थे। उनके बच्चे आदि सब परिवार वाले हमारी बहुत देखभाल करते थे। हमारा गौशाला हर दिन स्वच्छ रखते थे। माँ समान हमारी पूजा करते थे। सब हमारा सम्मान करते थे। गोपालन ही उनकी मुख्य जीविका थी।

श्वेता सिर हिलाकर धीरे से बोली– 'हाँ, तभी तो हमारे दूध से यह इतने स्वस्थ थे। देश में दूध–घी की नदियाँ बहा करती थीं।'

विदुषी कुछ सोंचते सोंचते बोलने लगी– 'मैं सोंचती हूँ आज के मनुष्यों को क्या हुआ है! क्यों उनके मनों में इतना परिवर्तन आया है! वे क्यों नही जानते कि सब प्राणियों में आत्मा है! सब में दुख–सुख की अनुभूति है। फिर ये मनुष्य क्यों हम पशुओं से इतना बुरा व्यवहार करते हैं।'

'बहिनो– आपसे कहूँ मेरा मालिक तो मुझे कभी भर पेट खाना नही खिलाता है। थोड़ा चारा क्या फेंका–बस दस–दस लीटर दूध की आशा रखकर मेरे थन दुहता रहता हैं। भला मेरा हाल देखो– देखो मेरे थन कितने सूजे हैं। बहुत दर्द होता है। पर क्या करूँ! कैसे उसे समझाऊँ। दर्द सहा नही जाता।' नन्दा बोली।

नन्दा की ओर सहानुभूति दिखाकर सब गायें उसके क्रुध स्वामी को कोसने लगीं। इतने में लाली गाय से न रहा गया बोली 'बहिनों अपनी दशा क्या बताऊँ। मेरे मालिक के बच्चे कितने उपद्रवी हैं। कभी मेरी पूछँ मरोड़ते हैं– कभी सींग पकड़ते हैं। कभी मेरे कान खींचते रहते हैं यहाँ तक कि कभी–कभी डंडे भी बरसाते हैं। पर मालिकिन–मालिक उन्हें ऐसा करने से कभी मना नही करते हैं। उनके इस उपद्रव से वे स्वयं, आनन्द लेते हैं। ईश्वर ही मेरी दशा जानता है।'

उमा गाय तरस खाकर बोली– 'हाँ जब माता–पिता ही बच्चों को न सिखायें। उनको भले–बुरे की पहचान न दें। उन्हें अहिंसा की शिक्षा न दें। उन्हें हर प्राणी से प्यार करना चाहिए न सिखायें। तो बच्चे क्या सीखेंगे। वे सब कार्यों में अपनी मौज–मस्ती मनायेंगे। चाहे अच्छा हो या बुरा। उचित हो या अनुचित।'

अब सविता कहने लगी– 'पिछले मास की बात है मैं बहुत बीमार पड़ गयी। एक सप्ताह मैंने कुछ नही खाया। मेरा स्वामी केवल मुझे पुचकारता रहा कभी नही सोंचा बेचारी को डॉक्टर को दिखायें। कुछ जड़ी–बूटी ही लाकर दें। मेरे मालिक ने कभी–मेरी कराह जैसे सुनी ही नही। मैं अपनी आँखों की भाषा से क्या मनोभाव प्रकट कर रही हूँ; उसने कभी इस ओर ध्यान ही नही दिया। केवल दूध दुहने का चिन्ता में डूबे रहते हैं।

'हां–हां–मारकर भी हमें बेचते हैं। हमारी खाल बेचकर भी पैसे कमाते हैं। लाली बोली।

विदुषी जो नाम से ही नही अपितु वास्तव में समझदार थी। एक विदुषी ही थी; जिसने पुनः अपना सिर ऊपर उठाया कहने लगी 'मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वे इन मनुष्यों को सद्बुद्धि दे, वे समझें कि किस प्रकार गाय अपना दूध अपने बच्चों का पेट काट कर उन्हें थोड़ा–थोड़ा पिलाकर उनके सामने यथा संभव सब ही प्रस्तुत करती हैं। क्या हम अपने बच्चों का अधिकार नही छीनती हैं। ऐसा करते क्या हम मालिक की सेवा नही करती हैं ऐसा सोंचने की शक्ति ईश्वर उनको प्रदान करें। उन्हें अच्छे और बुरे में अन्तर क्या है ऐसा समझने की शक्ति दे दे। ताकि हम भी सुखी जीवन बितायें। ईश्वर उनके मस्तिष्क में जागृति पैदा करे तथा हमारा सम्मान करने की सद्बुद्धि दे दे। सब प्रार्थना करने लगीं कि ईश्वर मनुष्य को सद्बुद्धि दे दे कि वे जीवों पर दया करें। इतने में दूसरी ओर से ग्वाला बाँसुरी बजाता आता है और सारी गायें उठ–उठकर ग्वाले के साथ चलकर घर का मार्ग लेती हैं।

27

मेड आई; सन्तोष लाई।

यह उस विशाल भारत के बड़े–बड़े नगरों के घर–घर की कहानी है जहां लोग दूसरे प्रान्तों, शहरों या गाँव से अपनी रोजी ढूढँनें बड़े–बड़े शहरों में पलायन कर जाते हैं। धीरे–धीरे विवाहित जीवन इन्हीं बड़े–बड़े शहरों में व्यतीत करते हैं। पूर्वजों के निवास स्थान घर के वृद्ध पुरूषों के लिए ही रह जाते हैं। जो यह मनुष्य खेती बाड़ी, नौकरी या निजी व्यवस्था के कारण नही छोड़ सकते है तथा छोड़ना भी उचित नही है। तात्पर्य यह पूर्वजों से बसा बसाया आता एक सम्पन्न घर कई भागों में बंट कर न्यूक्लियर घरों का जन्मदाता बन कर रह जाता है। नगरों के निवासी बनकर दोनों दम्पति दो जून की रोटी जुटाने के लिए प्रातः से सायं तक काम में जुटे रहते हैं। घर केवल मेड (घर की नौकरानी) के हवाले रह जाता है और उसी के सहारे जीवन भी। कैसे कैसे कष्ट सहने पड़ते हैं; इसका अनुमान भोगताओं से बढ़कर कौन जान सकता है।

एक लघु उदाहरण यह हैः–

टेलीफोन की घंटी बजती है–

रीताः– हैलो–हैलो! हाई सुनीता कैसी हो!

अरे यार यह मुबारक तो आपको ही है।

मैं तो ईश्वर को अभी प्रसाद चढ़ाऊँगी।

उसका लाख–लाख धन्यवाद दूँगी आखिर घर पर मेड तो आई।

हाँ, हाँ। पंकज ने अपने साथ अभी–अभी लाई। मार्ग में ही आपके पति भूषण जी को सब सूचना दी। आखिर ऐसा संभव उनकी सिफारिश से हुआ है।

हाँ, यार। आयु की छोटी है पर अधिक नही। छोड़ो ना यार। जो भी हो, जैसी भी हो। मेड तो आई ना। क्या करूँ। पता है ना कितनी कठिनता होती है। क्या–क्या सहना पड़ता है।

यार। यह सब तो तुम्हारी और तुम्हारे पतिदेव की ही कृपा है। आपके सहयोग से ही प्लेसमेंट से मेड मिली।

चलो यार। आज रूपयों की ओर कौन, देखता है। आजकल 'पैसा फेंक तमाशा देख' का ही रिवाज है।

छोड़ो यार। रूपयें तो आते जाते है। रूपये तो मिलते रहेंगे। कठिनाई तो टली ना। धन्यवाद है ईश्वर का।

छोटी ही है। बच्चों जैसी दिखती है। पालूँगी। विवश हैं। क्या करें। हमें अपने बच्चे कम, दूसरों की औलाद (सन्तान) अधिक खिला–खिलाकर बड़े करने पड़ते हैं। उनको पालना पड़ता है। अपनी जेब काटकर इनके नखरे सहने पड़ते हैं।

हां, हां! पार्टी तो अवश्य मनायेंगे। और वह भी शीघ्र ही। अजंली को भी बुलायेंगे यार। उसने भी निजी तौर मेड ढूँढने में बहुत यत्न किये।

अच्छा पति जी को हमारी ओर से थैंक्स (धन्यवाद) कहना। हम दोनों रियली (वास्तव में) आपके आभारी हैं। अच्छा बाई।।"

मेड के गृह प्रवेश करते ही पंकज ने उसे कुर्सी पर बिठाया। एक ओर आसन और कुर्सी दिखाकर बोला– "इसी पर बैठा करना।" रीता प्रसन्न चित्त आई मेड का स्वागत करने। सोचा। छोटी तो अवश्य है पर उतनी भी तो नही है। ठीक ही तो है।

''नाम क्या है तुम्हारा।'' रीता ने प्रश्न किया। उत्तर धीमे स्वर में मिला– ''आरती।'' पुनः प्रश्न हुआ– ''बैग में क्या लाई हो?'' खोलकर देखा गया एक छोटी सी ओढ़नी, एक कुर्ता सलवार। और कुछ नही। हाँ, एक कुर्ता सलवार और एक ओढ़नी पहने थी। तथा पाँव में एक पुरानी नायलॉन की चप्पल थी। बस। और कुछ नही है? ''जी नही।'' उत्तर मिला।

''अच्छा। उठो। वाशरूम में जाओ। यह लो सिर पर मेडीकेयर लगाओं और नहाकर नई कंघी बालों पर लगाओ और यह नये कपड़े, चप्पल पहनकर बाहर आना। रीता बोली प्लेसमेन्ट द्वारा झारखण्ड के गाँव से पहली बार दिल्ली लाई गई मेड ने मेडिकेयर का नाम कहां सुना था। आश्चर्य नयनों से वह देखने लगी। सब कुछ दिखा–सिखा कर मेड को वाशरूम में नहाने के लिए भेजा गया। गीजर से गर्म पानी की बाल्टी सामने थमायी गई।

धन्यवाद है तेरह–चौदह वर्ष आयु की मेड जी एक घंटे पश्चात रीता के द्वारा कई बार दरवाज़ा खटखटाने के पश्चात वाशरूम से बाहर आई।

मैं; अपनी एक पोती और पोते के समेत, जो मेरे सामने बैठे थे। सब देखता रहा।

मेड जी की ओर देखकर सोचा नहा धोकर तो आई। पर 'कारी (कम्बल) पर चढ़त न दूजा रंग। क्या यही उदाहरण है!

मुझसे न रहा गया। अपनी 'भाषा में अपने पुत्र पंकज से सम्बोधित हुआ– ''हज़ूर; यह किस फॉरेन प्लेसमेन्ट से तोहफा लाये हो, जी। कितना मासिक तय हुआ ? ऊपर से कितना चढ़ावा चाय–पानी मिठाई; शायद, आज कल की भाषा

में गुडविल या गुड जैस्चर आदि नामों से अलंकृत किया जाता है। देना पड़ा।" पर उत्तर मिलाः–

"हे डैडी कृपया आप कुछ न बोलना। एक वर्ष से हम मेड की तलाश में रहे हैं। कोई मनानुसार नही मिली। यह जैसी है हम पर छोड़ दो। कृपया हम पर ही छोड़ दो। याद नही क्या। दो वर्ष पहले बाईस वर्ष की गंवार ने बिजली के प्लग (plug) मे चार इंच कील कपड़े टाँगने के लिये ठोंका था। शुक्र है कि उस समय पावर नही था। वरना ईश्वर बचाये क्या क्या भोगना पड़ता। ऐसा तो आपने ही स्वयं सबसे पहले देखा था। ऐसे–वैसे गंवार, अनजान लोगों से हमारा सामना कभी–कभी होता है। कैसे–कैसे लोगों से पाला पड़ता है– आपको क्या बतायें। क्या करें विवश हैं।

क्या बताऊँ; आपके यहां न रहने के कारण आपके सामने बैठे इस आपके लाडले पोते को एक दिन बाहर गली पर बैठी कपड़ों पर इस्तिरी फेरने वाली के पास रखना पड़ा और बदले में दूसरे दिन एक नयी साड़ी दे दी। दूसरे एक ऐसे ही अवसर पर इस दिल के टुकड़े को एक समय पार्लर पर रखना पड़ा।

अब आप क्या कहेंगे? पिता जी। उत्तर दीजिये। आप कुछ समय के लिये आते हैं तो साँत्वना मिलती है। पर आगे आपके पीछे हमें क्या क्या सहना पड़ता है वह हम ही जानते हैं। पर यह भी बताऊँ मनुष्य की प्रवृत्ति (इनसानी फितरत) एक जैसी नही होती है। कई अपने बहन–भाइयों, सगे सम्बंधियों से अधिक घनिष्ठ तथा सहायक मिलते हैं।" कठिन समय पर अपनों से भी अधिक सहायक एवं शुभ चिंतक सिद्ध होते हैं

मैं चुप रहा। मेरी धर्मपत्नी भी अवाक रही। चारों ओर निस्तबद्धता और विवशता। सोचा, मरता क्या न करता! मैं; सब

अवाक सुनता रहा, देखता रहा। ये बेचारे भी सच बोलते हैं यह भी समय की परीक्षा दे देकर थके पड़े हैं। यह ऐसे व्यवहार वातावरण में फंसे हैं जहां कठिनता ही कठिनता है। दो जून की रोटी कमाने के लिये सैकडों परिश्रम करके अपने आपको इस लायक बनाना पड़ता हैं कि प्रसन्नता छोड़, दिल रखने के लिये साँत्वना मिल जाये तो ये समझें, कि हम भी कुछ कर दिखाने के लायक हैं। कुछ कर सकते हैं पेट पालने के लिये। सहसा मेरे मस्तिष्क में विचार आया यह जीवन का एक पहलू है पर दूसरा यह भी है कि यदि मैं कुछ न बोलूँ तो घर का सबसे बड़ा नायक कैसे जाना जाऊँ! इतनी देर मेड को मेरे पास मेरे लिये एक चाय का कप देकर भेजा गया।

मेड जी मेरे सामने थी। तो भला मैं क्यों अवाक रहता! घर का सरदार हूँ। चाहे कुछ सप्ताह या मास भर के लिये ही आया हूँ, पर बड़ा नायक तो हूँ ना। मैं भी मेड जी का, दो चार प्रश्नों की बौंछार डालकर इन्टरव्यु ले बैठा। सोचा ठीक है। विष्णोकर्मा को पूजती है। हिन्दू ही है। किचन में भी चलेगी। पर इसे सब कुछ सिखलाना पड़ेगा। फिर भी मैंने एक और प्रश्न पूछना आवश्यक समझा। मैंने पूछाः–

"तेरी आयु क्या है, बेटी ?"

धीमे स्वर उत्तर मिला– "माता पिता ने नही बताया।"

मैं स्तब्द्ध, चकित रहा। सोचता गया– पन्द्रह हज़ार रूपये प्लेसमेन्ट वाले ने वार्षिक फीस अग्रिम के तौर ले लिये। ढ़ाई हज़ार रूपये मासिक इस अनजान लड़की को, जो घर के कार्य से बिल्कुल अपरिचित है। जिसे रोटी क्या! गैस क्या! फ्रिज क्या! चाय बनाना क्या! जो कमरे में झाड़ू लगाने से भी अनभिज्ञ है; को वेतन के रूप में देने हैं। ऊपर से वस्त्र, खाना पीना, बिस्तर, कमरा आदि।

वाह, रे दिल्ली! वास्तव में यहाँ रहने के लिये कड़वा रस पीना पड़ता हैं यहां दिल वाला ही रह सकता। हिसाब लगायें मेड जी का व्यय मासिक छः हज़ार तक तो आसानी से बैठ सकता है। क्या यह इस योग्य है? चार–पाँच हज़ार रूपये कमाने के लिये क्या–क्या और कैसे–कैसे पापड़ बेलने पड़ते हैं यह हम ही जाने।

चलो, अब देखना है आगे क्या होता है। यह मेड जी, किस स्वभाव की है। किस व्यवहार की है। क्या यह हमारी कुछ सेवा कर सकती है या उल्टा हमें ही इसको पालना है। इसकी सेवादारी में लगना है इसे प्रातः नींद से जगाना है। देखते हैं– हमें कौन सी अब परीक्षा देनी पड़ेगी।

पर घर के सदस्यों को साँत्वना तो मिली कि घर में मेड पधारी है जिसके सहारे अब हमें रहना है। आजकल की न्यूक्लियर फैमली में कहां से लायें ज्वाइन्ट फैमली में रहने वाले, चाचा–चाची, दादा–दादी, नाना–नानी वाले वह मौज मस्ती के दिन! आज सब अपनी–अपनी गृहस्थी की गाड़ी को चलाने की चिन्ता में प्रायः से सायं तक या रात गये तक व्यस्त, चिन्तित और लाचार हैं। सन्तोष देने वाली है केवल घर की मेड। इसीलिये कहते हैं मेड आई। सन्तोष लाई।

28

कर्म

1. जब एक पक्षी जीवित होता है– यह चींटियाँ खाता है।

   पर, जब एक पक्षी मृत होता है– इसे चींटियाँ खाती हैं।
2. समय और परिस्थिति में किसी भी पल कोई परिवर्तन आ सकता है। भाग्य कभी भी करवट बदल सकता है।
3. जीवन भर किसी को कोई दुख न पहुँचाना या किसी प्रकार न्यून न समझना। आज तुम बलवान हो सकते हो, पर स्मरण रहे– समय तुमसे अधिक बलवान है।
4. एक वृक्ष से लाखों दीया सिलाइयाँ बन सकती हैं पर लाखों वृक्ष को नष्ट करने में केवल एक दीया सिलाई काफी है।
5. यदि तुम्हारी टेलीफोन कॉल पर सुनने वाला न मुस्कराये, हंसे नही या प्रसन्न न हो तो तुम्हारी कॉल छोटी है– उसमें कमी है।
6. जब बुद्धि शुद्ध हो तो छोटे–छोटे कर्म से मनुष्य बड़े से बड़े कर्म कर सकता है। लेकिन यदि बुद्धि शुद्ध न हो तो मनुष्य छोटे से छोटे कर्म करने में भी असमर्थ होता है।

29

राधामाल

कश्मीर वादी में हिन्दू कन्या का नामकरण निम्नलिखित शब्दों से किया जाता था और आयु भर उनका सम्बोधन दिये गये नाम शब्दों से ही होता था। बहुत प्रचलित थे ये नाम।

जैसेः– पद्मावती, सूमावती, रूपावती, तारावती, कमलावती, चन्द्रावती, प्रभावती, गुणवती, शोभावती, लीलावती, सौभाग्यवती, ओमरावती, पोशकुज, सोंपकुज, मातकुज, ताराद्यद, रनिमद्यद, धनवती, अरण्यद्यद, बेन्यद्यद, भवानीद्यद, भट्टिनद्यद क्यंगमाल, यम्बरजल, लच्छकुज, अरूणदती, सय्दलक्ष्मी, क्वंगकुज ओमाश्वरी, परमेश्वरी, गौवरीश्वरी, जयादेवी, कौशल्यादेवी, आशादेवी, बिमलादेवी, मोहिनीदेवी, जगतदेवी, श्यामारानी, अमरावती, ऊषादेवी, ज्योतमाल, सुखमाल, ॲरिष्यमाल, शीलावती, चूनीदेवी, रचमाल, तारामाल, राधामाल, आदि। यद्यपि वर्तमान काल में कई बेजोड़ तथा निरर्थक नाम शब्दों ने इनका स्थान नये–नये रूपों तथा फैशनों के अर्न्तगत लिया है, पर उपरोक्त सार्थक शब्दों ने अपना स्वरूप एवं महत्व नही खोया हैं अभी भी, इस परिवर्तित युग में भी प्रायः स्थानों तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे नाम प्रचलित हैं तथा प्रशंसनीय हैं।

उपरोक्त नामों मे से मेरे सम्मुख जब भी किसी प्रकार किसी 'राधामाल' का नाम लिया जाता है तो मेरे शरीर में सहसा बेचैनी छा जाती है। इस नाम की ध्वनि मेरे कानों में घुसते ही मुझे तीस वर्ष पीछे ले जाती है और उस समय के

पल–पल का स्मरण कराती है जो मैंने एक महिला के सर्म्पक में आकर व्यतीत किये हैं। वह महिला जिसने मेरे हृदय तथा मस्तिष्क दोनों में विशेष स्थान प्राप्त किया है। जिसने मुझमें अपने व्यक्तित्व की वह छाप डाली है जो अब भी तीस वर्ष व्यतीत होने के पश्चात भी वैसी की वैसी ही है। जिसमें किसी प्रकार का अन्तर क्या फीकापन भी नही आया है वैसे तो मुझे प्रायः उसका स्मरण आता रहता है पर जब भी किसी दूसरे मुख से 'राधामाल' का शब्द सुनता हूँ तो सहसा मैं एकाग्रचित उस नारी के स्मरण में खो जाता हूँ जिसके सर्म्पक में आकर मैंने चार वर्ष व्यतीत किये जो मेरे जीवन के भाग्यशाली वर्ष रहे हैं। उसके साथ हुए वार्तालाप की याद में, मैं प्रायः इतना खो जाता हूँ कि किस प्रकार घंटे बीत जाते हैं मुझे इसका कोई ध्यान नही रहता है।

मुझे क्या ज्ञात था जिस निर्बल, जर्जर हथेली पर मैं पन्द्रह रूपये रखूँगा वही हथेली चार वर्ष मेरे शीश पर ममता भरा आशीर्वाद बरसाती रहेगी। मिलन की वह घड़ी एक आकर्षण की घड़ी थी, एक चिरस्मरणी घड़ी रही मेरे लिये। मेरा उसके प्रति श्रेय था और उसका वहां से स्नेह था। कुछ मिनटों के मिलन ने धीरे धीरे इतनी आत्मीयता बढ़ाई कि चार वर्ष एक–दूसरे के विश्वासी बन बैठे। वह मेरी ओर ममता भरी नेत्र उठातीं; मैं उन नेत्रों में एक माँ का स्नेह पाता। माँ का आशीर्वाद पाता।

पहली बार मेरा सर्म्पक उससे एक अध्यापक के नाते हुआ। कश्मीर वादी में एक उच्च कोटि का विद्यालय "टेंड़ेल बिस्कू स्कूल' के नाम का है। यहां कई दशकों से एक रीति चली आ रही हैं बच्चे प्रतिदिन या प्रतिमास इच्छानुसार अपने दैनिक जेब खर्चे से कुछ बचाकर अपनी कक्षा के अध्यापक के पास एकत्र करते हैं। यह एकत्रित राशि इस विद्यालय के

छात्रों द्वारा बनाई गई समिति 'poor Fund committee' के पास एकत्र की जाती है जो एक लेखापाल अध्यापक तथा प्रधानाचार्य के नेतृत्व में प्रतिमास निर्धन, निस्सहाय जनों में बाँटी जाती है। इन्ही निस्सहाय–निर्धन जनों में एक वृद्धा 'राधामाल' थी जिसे प्रतिमास पन्द्रह रूपये की सहायता देने की स्वीकृति मिली थी। यह राशि श्री प्राण नाथ काव (मेरे सह अध्यापक) जो राधामाल के मोहल्ले में श्री ए. के. बख्शी के निवास स्थान ट्यूशन देने जाया करते थे, द्वारा भेजे जाते थे। क्योंकि श्री ए. के. बख्शी के निवास स्थान ट्यूशन देने अब मेरा आना जाना आरम्भ हुआ तो 'श्री प्राण नाथ काव' ने 'राधामाल' के निवास स्थान राशि पहुँचाने का कार्य मुझे सौंपा तथा उसकी परिस्थिति से कुछ अवगत भी किया। अतः इसी दिवस से राधामाल को देखने की इच्छा मुझमें जागृत हुई। मई 1978, एक दिन जब पहली बार मुझे राधामाल को उक्त मासिक राशि देने का अवसर आया तो मैंने श्रीमति बख्शी से अनुरोध किया कि वे मुझे राधामाल का निवास स्थान दिखाये। क्योंकि यह परिवार उससे और उसकी परिस्थिति से भली–भान्ति परिचित था श्रीमति बख्शी ने मुझे राधामाल के दर्शन कराये। 8 मई 1978, साँझ का समय था ज्यों ही मैं पहली मंज़िल चढा फिर दूसरी की दस पौड़ियाँ चढ़ने लगा अपने भीतर मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कोई मुझे भी अपनी ओर खींचता हैं मुझमें राधामाल को शीघ्रतर देखने की उत्सुकता उत्पन्न हुई। तीसरी मंज़िल की आठ सीढ़ियां जिनमें दो तीन स्थान तंग मोड़ काटने थे; किस सतर्कता से एकदम कट गयीं इसका पता ही नहीं चला। हमने एक कमरे में प्रवेश किया जिसे कश्मीरी में 'कॉनी' कहते हैं। 'कॉनी' पुराने ढंग के मकानों से सम्बन्धित है। मकान के सबसे ऊपर वाले खुले कमरे को जहां चारों ओर खिड़कियों द्वारा वायु का आना जाना होता था 'कॉनी' कहते थे। श्रीमती बख्शी ने बिजली जलाई

तथा कोने में बिछे बिस्तर की ओर संकेत किया। बिस्तर के निकट जाकर मैंने एक निर्बल, जर्जर महिला देखी। यह राधामाल थी। श्रीमती बख्शी ने उससे मेरा परिचय कराया। जर्जर काया ने नत दृष्टि से मेरा प्रणाम स्वीकार किया। हम एक घंटा वहां रहे। मैं स्तब्ध बैठा परिस्थिति की समीक्षा लेने लगा। कॉनी मकान की तीसरी मंज़िल का कमरा था जिसके साथ एक रसोई भी थी। दोनों में कुल चार खिड़कियां थीं। दीवारों पर बहुत समय पहले मिट्टी और गोंबर से की गई लिपाई अब फीकी पड़ गई थी। इसी के एक कोने में लगभग 65 वर्ष आयु की वृद्धा बिस्तर ग्रस्त थी। अनुमान लगाया जा सकता था कि तीन मंज़िलों का घर एक समय एक सम्पन्न परिवार रहा होगा। अब राधामाल एकान्त, निराश, निस्सहाय पड़ी है। अधिक रोगी नही थी पर निर्बल अवश्य थी। मेरे मस्तिष्क में प्रश्न उठा कि क्या श्री बख्शी परिवार के अतिरिक्त इसे देखने और भी कोई आता है या नही? पर इस समय इस प्रश्न के उत्तर के जानने की चेष्टा नही की। क्योंकि श्री बख्शी परिवार का मुझे पूरा ज्ञान था इसलिए राधामाल बिल्कुल (सर्वथा) परित्यक्ता नही थी पर एक परितापी महिला अवश्य दिखती थी। इस समय मेरी राधामाल से बातचीत कम हुई। मैंने उसकी हथेली में पन्द्रह रूपये रखे। निर्बल हथेली धीरे–धीरे उठकर मेरे शीश पर आ बैठी। राधामाल आशीष देने लगी– नत दृष्टि से–निर्बल शब्दों से। मैंने अपने शीश पर कोई दिव्यहस्त अनुभव किया। किसी दिव्यात्मा का आशीष पाया। मैंने चाहा यह आशीष भरा हाथ मेरे शीश पर सदा रहे! पर थोड़े क्षणों पश्चात निर्बल हाथ पुनः बिस्तर पर आया। मैं जान गया राधामाल अवश्य एक सम्पन्न परिवार की मुख्या रही है। एक आदरणीय वंश की एक आदणीय महिला अवश्य रही है। अपने कोख से जन्माये लाडले बच्चों की माँ अवश्य रही है। अपने पतिदेव 'कृष्ण' की चाहती 'प्यारी राधा' अवश्य रही

है। पर अब काल की दुखियारी, भाग्य की मारी–'राधामाल' है। अवश्य विकराल महाकाल की छाया ने इस सम्पन्न परिवार को सदा के लिये एक दूसरे से पृथक किया है तथा राधामाल के भाग्य में एकान्त देकर नेत्र के अश्रु पीने रखा है। वह भी अब इस आयु में! मैं सोंचता विचार लीन हुआ कि देखो विधाता की लीला अपरंपार हैं किसके भाग्य में क्या लिखा है इस संसार में जीव को क्या–क्या देखना है! क्या–क्या सहना है! किन–किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता हैं– यह वही परमात्मा जाने। इन विचारों में खोया हुआ मैं राधामाल के चेहरे की ओर देखता रहा। किस प्रकार एक घंटा व्यतीत हुआ इसका कदापि पता नही चला। मैंने अब राधामाल से विदा होने की अनुभति माँगी। उसने अपना दाहिना हाथ और सिर तनिक ऊपर उठाया और हमारी ओर दृष्टि करके आशीर्वाद देने लगी। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लिया इस पश्चात थोड़ी देर रूककर हम दोनों कॉनी से नीचे उतरे। अपना–अपना मार्ग लेने से पहले मैंने श्रीमति बख्शी को सहृदय धन्यवाद दिया उन्होंने मुझे आज इस संसार का वैसा ही स्वरूप दिखाया था जैसा महात्मा बुद्ध ने अपने बाल्यकाल में 'सिद्धार्थ' होकर अनुभव किया था।

राधामाल की विपदाभरी दशा का अवलोकन करके मैं शोकाकुल अपने निवासस्थान की ओर प्रस्थान करता गया। आठ किलोमीटर के मार्ग पर साईकिल सवार होकर राधामाल की स्थिति से अपने स्वयं को सम्मलित करने के सपने जुटाता गया। अपने गृहद्वार के भीतर प्रवेश करने से पहले प्रण किया कि एक दूसरे दिन मैं अवश्य उसे देखने जाया करूँगा।

इस संकल्प के अनुसार दूसरे दिन से मैं उसके पास सप्ताह में दो तीन बार अवश्य जाने लगा। वहां एक आधा घंटा ठहर जाता। यद्यपि राधामाल निर्बलता के कारण अधिक नही बोल पाती परन्तु मेरे वहां आने से उसे सांत्वना मिलती

थी। इसका वर्णन उसने मुझसे बहुत बार किया। मेरा वहां जाना प्रायः संध्या समय का होता था अतः उसके चाय–भोजनादि के सम्बन्ध में कम जान सका परन्तु श्रीमती बख्शी को वहां भोजन लाते कई बार देखा। जितने वर्ष मैं वहां गया (चार वर्ष) किसी अन्य पड़ोसी के दर्शन संध्या के समय मैंने वहां नही किये। राधामाल को सर्वदा अकेला ही देखा।

मेरा वहाँ जाना प्रायः शनिवार का कार्यक्रम होता था जो सामान्यतः दो वर्ष 1980 ई. तक चलता रहा। पर अगस्त 1980 ई. की अन्तिम रविवार का दिन मैं कभी नही भूला पाता हूँ। इस दिन एक दिवस पूर्व यानी शनिवार को किसी कार्य वश वहां न जा सका तो रविवार को प्रातः ग्यारह बजे राधामाल के निवास स्थान पर पहुँचा। मेरे हाथ में कुछ अँगूर थे। साधारणतया कॉनी में प्रवेश कर में बिस्तर की ओर कदम बढ़ाकर बैठ गया। अंगुर सिराने निकट रखकर मैंने बिस्तर खाली पाया। विस्मयता, मैं इधर–उधर देखने लगा, सहसा मेरी दृष्टि रसोईघर पर पड़ी। मैंने देखा; लाल दुपट्टा ओढ़े कोई महिला दम चूल्हे पर कुछ बना रही है।

आज किसकी छवि इस सुनसान पड़े रसोईघर में खिल रही है? कौन सी लाल परी राधामाल का दुख बाँटने आज यहाँ पधारी है? कौन सा चन्द्रमा इतने वर्षो के आच्छादित मेघों को एक ओर हटाकर कॉनी में शोभायमान है? इस कौतूहल से मैं रसोईघर की चौखट पर आया। महिला ने मेरा 'कॉनी' में प्रवेश करना तथा चौखट तक आना सब देखा था; पर दोनों अनदेखा और अनसुना किया। चुपचाप, बिना किसी हरकत के दम चूल्हे के पास बैठी रही। उसका लाल दुपट्टा थोड़ा नीचे सरका। महिला ने दुपट्टे को ऊपर सिर पर दोबारा रखने का यत्न क्या किया कि मैं उसकी निर्बल अंगुलियाँ पहचान गया।

'अरे! यह तो स्वयं राधामाल है!' मैं सहसा प्रसन्न–चित खिल उठा।

यह राधामाल थी! अपने यौवन की यादों में खोई। अपने स्वप्नों में लीन लाल दुपट्टा ओढ़े।

मुझे मुस्कराते देखा वह भी मुस्कराई। उसी मुस्कराहट से धीरे से बोली: ''क्यों बेटे! अचम्भे में पड़ गये आज मुझे यहां इस स्थान पर देखकर।''

मैंने अति प्रसन्नता प्रकट की तथा आज के करिश्में का कारण जानना चाहा। ज्ञात हुआ आज कोई स्त्री आई थी उसने इन्हें नहलाया था केश संवारे थे। सम्भवतः श्रीमती बख्शी होगी मैंने अधिक ध्यान देना उचित नही समझा।

''आपने मेरे आने पर इतनी चुप्पी क्यों धारण की?'' मैंने पूछा।

''केवल आपको अचम्भा देने।'' उत्तर मिला। दम चूल्हे पर चाय उबल गई। पीतल के एक तुम्बे (छोटा जलपात्र) में बनायी थी। थोड़ा मुझे भी देकर राधामाल ने अपने लिए एक 'खासू' (लई धात का प्याला) में बाकी चाय डाल दी।

मैंने उनका हाथ थामकर उन्हें बिस्तर पर लाया जहां उन्होंने चाय का सेवन किया। बातों बातों में उसने बताया कि उन्हें देखने राशन घाट का हेड हमाल मास में एक बार साफ सुथरा राशन (चावल) लेकर आता है तथा कभी कभी दूध भी लाता है। यदि हो सके उससे मिलना। मैंने इसकी स्वीकृति दिखाई।

करीब एक घंटा वहां रहकर आज के दिन कमरे से सारे मैले कपड़ों की एक गठरी बांधी तथा अपना मार्ग; आज्ञा पाकर, लिया। हेड हमाल की सूचना से मुझे सांत्वना मिली कि कश्मीर की कश्मीरियत कम नही हुई है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख की एकता, यहां के शताब्दियों से चले आ रहे भाई चारे

की परंपरा में कोई कमी नही है। यह उदाहरण संसार के लिए एक मशाल है। किस प्रकार एक मुसलमान मज़दूर मुखिया एक हिन्दू निस्सहास महिला की यथा सम्भव भावात्मक सहायता करता है। इसी प्रकार हिन्दू भी मुसलमान के किस प्रकार सहायक बनते हैं, एक दूसरे पर न्यौछावर होते हैं, आये दिन कई उदाहरण कश्मीर वादी में मिलते हैं।

मैं आधे घंटे में स्कूटर सवार होकर अपने घर पहुँचा। स्कूटर खड़ा करते ही मैंने कपड़ों को धोने की ठान ली। इसमें एक विशेष बात मेरे मस्तिष्क में आयी कि स्कूटर शेड के पास एकान्त में, बिना किसी के आशंका के, मैं यहां लगे नल के पास सुगमता से कपड़े धो सकता था। मैं अपने कार्य में लग गया। मुझे क्या ज्ञान था कि धर्मपत्नी ने मेरे स्कूटर की आहट से सब देखा था। मुझे स्कूटर शेड के निकट नल पर किसी कार्य में अति मग्न देखकर वह स्वयं निरीक्षण करने पधारी। किसी महिला के कपड़े देखकर, वह भी लाल डोरी वाला एक महिला का फेरन देखकर, वह चकित नेत्रों से मेरी ओर देखती रही। दो वर्ष रखा रहस्य आज खुल गया। मेरा रखा रहस्य, रहस्य नही रहा। सबका अवलोकन हो गया। न चाहते हुए मुझे सबकी व्याख्या करनी पड़ी।

ईश्वर का धन्यवाद! मुझे अपनी धर्मपत्नी की सहानुभूति प्राप्त हुई जो ऐसे कार्यों में प्रायः दुर्लभ होता है विशेषकर धर्मपत्नी की ओर से मुझे अति हर्ष सहानुभूति प्राप्त करने पर नही हुआ अपितु इन्हें कार्य में जुट जाने पर और वस्त्र रस्सी पर सुखने हेतु लटकाने पर हुआ। सोचा चलो; आज रविवार का दिन सफलता का दिन ही नही बल्कि संस्मरणीय दिवस रहा।

धुले सूखे वस्त्रों पर इस्तिरी चढ़ गयी। राधामाल के लिए शाकाहारी भोजन पकाकर डिब्बे में बंद हुआ तथा कुछ समय पश्चात यह सब राधामाल के पास ले जाने का और उन्हें भोजन कराने का आदेश मिला। अपनी धर्मपत्नी के व्यवहार से मैं उत्साहित हुआ। सन्तोष अनुभव किया। भीतर ही भीतर सोचा कि यदि घर वाली प्रसन्न तो सारा घर प्रसन्न। मैंने प्रसन्नचित आदेश का पालन किया।

इसके पश्चात मेरा वहां जाना प्रायः रविवार का नियुक्त हुआ। इन्हें भोजन कराने के पश्चात एक दिन हम बैठे थे इन्होंने सहसा मेरी ओर देखा और कॉनी में एक कोने पड़े लकड़ी के सन्दूक को खोलने के लिए कहा। मैंने सन्दूक खोला। ढक्कन खोलते ही मैं चकित हुआ। सन्दूक अन्तिम यात्रा की सामग्री से भरपूर था। कर्मकाण्ड की सारी सामग्री सन्दूक में विद्यमान पाई। कफन से लेकर अन्त्येष्टि तक का सारा सामान। तह किये स्वच्छ वस्त्र, घास का पुलहोर रूई भरकर ताँबे के सिक्के, शहद आदि यहां तक मिट्टी के पात्र में सूखी मछलियां देखकर मैं हक्का–बक्का रहा। मानो मेरे होश उड़ गये। अपना कफन अपने निकट! ऐसी दृढ़ता, ऐसी दूरदर्शता, ऐसा विश्वास; मैंने आज तक नही देखा था। मैंने सन्दूक पुनः उसी प्रकार बन्द किया जिस प्रकार वह था तथा अपने स्थान रखवाकर उसने मुझे अपने निकट बिठाया।

मेरी ओर देखते अपना निर्बल हाथ मेरे हाथ की ओर लाया मुझे थोड़ी देर संसार की कुछ बातें समझाकर सांत्वना देने लगी तथा इसी बीच बिना झिझके बड़े स्वच्छ तथा संक्षिप्त शब्दों से कहने लगी कि उसका अन्तिम समय शीघ्र आने वाला है उसका शरीर दिन प्रतिदिन बिगड़ रहा है इस सन्दूक में मेरी (उसकी) सब काम आने वाली वस्तुएँ हैं। ऐसा कहकर थोड़ा चुप रही तत्पश्चात पुनः धीरे शब्दों में कहना आरम्भ किया। कहने लगी उनके पुरोहित पं. केशव नाथ जी हण्डू हैं

जो रैणावारी में वास करते हैं। उनको मेरे देहान्तोपरान्त सन्देशा पहुँचाना। मैं शास्त्री पं. केशवनाथ जी से पहले ही परिचित था। मैंने उनकी इस आज्ञा के पालन करने का पूरा पूरा आश्वासन दिया तथा सांत्वना देता गया। मैं उनका ढ़ाढ़स तो बाँधता गया पर स्वयं मन ही मन व्याकुल, चिन्तित हो रहा था।

इसके दो मास पश्चात यानि अक्टूबर 1982 ई. से राधामाल के शरीर में परिवर्तन आने लगा। वह निर्बलतर होने लगी। एक दिन जब मैं उनके निकट बैठा था तो उनकी जर्जरता को देखकर मैं अनुमान लगा सका कि अब सम्भवतः राधामाल कम समय की अतिथि है।

मैंने एक कागज पर निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखकर उनके बिस्तर निकट दीवार पर चिपकाकर रख दिया। "राधामाल के अस्थि पंजर को देखकर लगता है कि इस संसार में कुछ समय की मेहमान है यदि किसी समय इनका शरीर अधिक बिगड़ जाये या इन्हें कुछ हो जाये तो कृप्या मुझे इस पता पर शीघ्रतर सूचित करने का कष्ट करें।

रोशन लाल काचरू?

टैंडेल बिस्कू स्कूल

शेख बाग श्रीनगर कश्मीर।

(नोटः कश्मीर में उन दिनों दूरभाष आज जैसे प्रतिघर में प्रचलित नही थे)।

पत्र चिपकाकर मैं पुनः उपचार में जुट गया।

कुछ दिन बीत गये। ऐसे ही चलता गया मैं निरन्तर वहां अपनी उपस्थिति देता रहा। वहाँ बैठकर स्वतः मेरी दृष्टि या राधामाल के चेहरे की ओर या सामग्री भरे लकड़ी के सन्दूक की ओर अथवा अपने चिपकाये हुए पत्र की ओर

जाती। इन तीनों की ओर स्थिर दृष्टि डालते हुए विचारता कि विरह की घड़ी शीघ्र आने वाली है। मास नवम्बर 1982 ई., अन्तिम शनिवार, प्रातः नौ बजे का समय; मैंने विद्यालय में प्रवेश किया ही था एक सज्जन मेरे सम्मुख राधामाल के देहान्त का दुखद समाचार सुनाने अति गंभीरता से खड़ा हुआ। उसने कहा "आपका पत्र दीवार पर देखकर मैंने सीधा आपको सूचना देना अनिवार्य समझा। राधामाल अब नही रही उनका देहान्त आज प्रातः हुआ है।"

आगन्तुक द्वारा लाये गये दुखद समाचार की श्रुति होते ही मेरे पैरों तले भूमि खिसकने लगी। स्रष्टा की ओर नेत्र उठने लगे। अश्रु रोकने चाहे, नही रूके; खूब बहे। गत चार वर्ष के एक–एक पल मस्तिष्क में चक्कर काटने लगे। अधीर खड़ा सोचता रहा। क्या वास्तव में राधामाल अब नही रही! अब किसके पास जाकर घंटे व्यतीत करूँ! किसके वस्त्रों पर इस्तिरी फेरूँ! किसके सिराने बैठकर सांत्वना देता ढ़ाढ़स बंधाऊँ। चार वर्ष की पारस्परिक आत्मीयता में अब पूर्ण विराम लग गया है! क्या फतेह कदल का मार्ग अब मेरे लिए बन्द हो गया!

मैं बेसुध, अधीर; भीतर ही भीतर सिसकियां भरता ऐसे विचारों में डूब रहा था सहसा मुझमें एक झटका सा लगा। मेरा साहस लौट आया। मेरे भीतर एक कर्तव्यवान अध्यापक सजग उठा। मैंने मानो एक करवट बदल डाली। इधर –उधर देखकर श्री प्राणनाथ को मेरे पास आने का सन्देशा भेजा। स्वयं नववीं कक्षा में प्रवेश किया वहां से आठ छात्र चुन लिए। उनकी पुस्तकें पड़ोसी सहपाठियों द्वारा उनके घर यह सूचना विस्तार पूर्वक देने हेतु सौंप दिये कि वे परेशान न हो जायें उनके बच्चे आज शनिवार आधे अवकाश के समय नही अपितु पूरी छूट्टी यानी चार बजे तक पहुँचेंगे क्योंकि इन बच्चों को किसी विशेष कार्यार्थ अध्यापक (मेरा नाम सहित) ने अपने

साथ कहीं लिया है। इस पश्चात (poor Fund committee) पुअर फण्ड समिति के कार्यवाह अध्यापक श्री जगरनाथ से राधामाल के दाह कर्म आदि कार्य में कुछ सहायता हेतु रूपये (75 रूपये) प्राप्त किये।

इस समय बीच श्री प्राण नाथ भी आये। अब हम दोनों ने आठ छात्रों समेत मेटाडोर (छोटी बस) में बैठकर फतेह कदल का मार्ग लिया। राधामाल के प्रांगणद्वार प्रवेश करके वहां आँगन में दस–बारह स्त्री पुरूषों को खड़ा देखा तथा चार पुरूष चटाई फैलाकर नीचे बैठे थे। छात्रों को स्कूल वर्दी में देखकर सारे चकित रहे तथा हमारी ओर देखते रहे। इनमें बैठे हुए पुरूषों में से एक मेरी ओर थोड़ी मुस्कुराहट से कुछ अधिक देर देखता रहा। मैंने अनुमान लगाया कि सम्भवतः यही राशन घाट का मज़दूर मुखिया है जिसका जिक्र एक दिन राधामाल ने मुझसे किया था। शायद राधामाल ने इससे भी मेरी बात छेड़ी हो। हम दोनों दूर–दूर से ही स्नेह भरे नेत्रों से परस्पर एक दूसरे का अभिनन्दन करते रहे। यहां बख्शी परिवार के अतिरिक्त एक दो व्यक्ति मेरे परिचित थे वे ताड़ गये अध्यापक बिस्कू सेना समेत किस (कार्य हेतु) आये हैं।

थोड़ी देर इधर–उधर निरीक्षण करने के पश्चात जब मैने देखा कि गर्म पानी का प्रबन्ध किया गया है तो मैं छात्र, श्री प्राणनाथ तथा एक सज्जन सहित पार्थिव शरीर को लाने कॉनी पर चढ़ा। शव को उनके गद्दे में लपेटकर नीचे लाने लग गये कि प्राचीनकाल के मकान की संकीर्ण सीढ़ियां उतरते यहां एक संस्मरणीय घटना घटी। ज्यों ही हम एक सीढ़ी पर मोड काटने लगे तो शव के मुंह से दीर्घ स्वर में 'ई' की ध्वनि निकली जिसने हमें अचम्भे में डाला कि क्या राधामाल का निधन हुआ है या यूँ ही इन्हें मृतक घोषित किया गया है! सौभाग्य से साथी सज्जन चिकित्सा विभाग से सम्बन्धित थे।

उन्होंने धीमे स्वर में समझाया कि हो सकता है इनकी किसी नस में वायु अभी तक रूकी पड़ी हो यहां इस संकीर्ण मोड़ पर झटका लगने के कारण वायु बाहर आ गई हों। अब गर्म पानी के स्नान से वास्तविक स्थिति का पता चलेगा। मृतक को गर्म जल से स्नान देने का मुख्य अभिप्राय यह भी है। स्त्रियों द्वारा स्नान की विधि पूरी हुई राधामाल स्वर्ग सिधार चुकी थी। धर्मानुसार अन्त्येष्टि की विधि यहां पूर्ण करके राधामाल को करण नगर, श्रीनगर, स्थित श्मशान भूमि की ओर अन्तिम यात्रा के लिए लिया गया।

शव को कंधे पर ले जाते देख **"क्षन्तव्यो मेपराधः शिव शिव शिव शम्भो। श्री महादेव शम्भो।"** का उच्चारण करते तथा अपने साथ बिस्कू सेना लिये दो किलोमीटर मार्ग की यात्रा पर मेरे परिचित मनुष्य मेरी इस दशा को देखकर वास्तविक बात जानने की चेष्टा में लग गये। इनमें कई लोग दूसरे दिन विद्यालय अपनी जिज्ञासा दूर करने पधारे। मुझे पूर्णतः स्मरण है इनमें मुख्यतः हमारे तत्कालीन सेवानिवृत्त मुख्याध्यापक श्री अमर नाथ मट्टू जी थे। उन्होंने जब मार्ग चलते उपरोक्त पंक्ति का उच्चारण करते मुझे देखा तो एकदम स्तब्ध मार्ग किनारे मेरी ओर देखते रहे थे तथा सच्चाई जानने दूसरे दिन विद्यालय सीधे मेरे पास पधारे।

राधामाल का दाह संस्कार तीन बज़े पूर्ण हुआ उपस्थित सोगियों ने चिता की परिक्रमा करके हाथ मुँह धोकर अपना अपना मार्ग ले लिया। मैंने छात्रों का हार्दिक धन्यवाद देकर उनके द्वारा आज प्रदर्शित धैर्यता और क्षमता की प्रशंसा करते हुए, उन्हें आगामी जीवन में दूसरों के दुख–सुख में कर्मठता से सम्मिलित होने का पाठ पढ़ाया तथा दूसरी ओर अपना निजी आभार प्रकट करके अपने–अपने घरों के लिए विदा किया।

सब विदा हुए। श्मशान भूमि के सुनसान वातावरण का अनुभव करके मैं पुनः जलती चिता की ओर चला गया। वहाँ बैठकर स्वर्गीय राधामाल की याद में खो गया। कुछ देर पश्चात चिता की ज्वाला शान्त हुई। मैं भी उठा। टूटे कदमों से चिता की तीन बार परिक्रमा की। राधामाल को हाथ जोड़कर अन्तिम प्रणाम किया। किसी हुई भूल चूक की क्षमा याचना करते वहां से विदा हुआ।

चार बज चुके थे। मैं सीधा 'रैणावारी' की ओर पं. केशवनाथ शास्त्री को स्वर्गीय राधामाल के पूर्व आदेशानुसार आज की सूचना देने चला गया। पंडित जी घर पर नही थे। उनकी धर्मपत्नी को सारा समाचार सुनाया तथा अपने घर की ओर प्रस्थान किया।

तीसरे दिन मैंने राधामाल के निवास स्थान निरीक्षण हेतु जाने का साहस जुटाया। मकान गली से ही अपरिचित सा अनुभव किया। प्राँगण में प्रवेश करने पर मकान का दूसरा रूप देखा। पहली मंज़िल से तीसरी मंज़िल तक सारी खिड़कियाँ खुली थीं। जिस कॉनी की खिड़कियाँ गत चार वर्ष कभी खुली नही देखी थीं। उस कॉनी का कोना–कोना आज स्वच्छ वायु–धूप से चमक रहा था।

मैंने घर के भीतर दो मंज़िल तक जाने का साहस किया। कमरे स्वच्छ पाये। सीढ़ियों पर गोबर मिट्टी से लिपाई की गयी थी। पहली मंज़िल के एक कमरे में एक पुरुष को तथा दूसरी में एक कमरे में तीन बच्चे अपनी मस्ती में कैरम बोर्ड खेलते दिख पड़े।

मैं उल्टे पाँव वापिस निकला।

"कॉनी पर किसने कब्जा जमाया होगा!" मेरे मन ने सोचा।

"क्यों! क्या! उस सज्जन पर नज़र नही पड़ी थी जो बीच मार्ग अर्थी तेरे कंधे छोड़, शीघ्र कदम दौड़ाता पीछे वापिस जा रहा था।"

उत्तर मिला।

"कौन! जिसे आज मैंने कमरे में देखा।" मैंने कहा।

"हां! वही। निचले भाग का वासी, ऊपरी कॉनी पर श्मशान भूत बनकर कब्जा जमाने, अपना अधिकार जताने गया था।"

उत्तर मिला।

"पर मैंने गत चार वर्ष उन्हें राधामाल के निकट कभी नही देखा।" मैंने कहा।

"इसे कहते हैं 'स्रष्टा की करनी, ईश्वर के करिश्में।' किसके भाग्य में क्या लिखा है। किसके हाथ पैर, किसके काम आते हैं। किसकी नियत कैसी है। इन सब का ज्ञाता वही संसार के स्रष्टा हैं।" उत्तर मिला।

राधामाल का दसवाँ दिन आया।

"मुझे दसवें दिन जाना चाहिये। देखूँगा क्रिया कर्म हुआ या नही!" मैंने मन में सोचा।

मैं साहस जुटाकर फतेह कदल पहुँचा। प्राँगण में प्रवेश किया। मकान उसी प्रकार खुला देखा। सारी खिड़कियाँ खुली थीं। मैं भीतर चला गया। निचली मंज़िल का कमरा खुला था। उसमें केवल एक महिला देखी। दूसरी मंज़िल पर गया दो वृद्ध पुरूष देखे। उन्हें अनदेखा कर दो–तीन सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ा। यहीं सीढ़ी से ही कॉनी की ओर दृष्टि दौड़ाई राधामाल के स्थान को हाथ जोड़कर अन्तिम प्रणाम करके नीचे उतरा।

कमरे में वृद्ध पुरूष परस्पर बातों में मग्न थे। मैं निचली सीढ़ियाँ उतर रहा था। उन्होंने मेरी ओर देखा। मैंने भी उनकी ओर दृष्टि की। वे मेरे अपरिचित थे। मैं भी उनका अपरिचित निकला। परस्पर के नेत्र मिले। पर बिना वाक् के। केवल मन के भीतर नमस्कार किया।

मैं घर के बाहर आया। यही विचारा कि सम्भवतः नदी घाट गये होंगे दसवें दिन की क्रिया करने।

बस; उस दिन से आज दिन तक उस गली से मेरा गुजरना नही हुआ।

वह राधामाल की गली थी। राधामाल चली गई। मेरा वहां अब क्या काम!!

30

वह काल रात्रि थी

मेरे जीवन में कई संस्मरण हैं। तथा इतिहास भरी एक पोटली भी है जो रोचक भी है तथा मार्मिक भी। मार्मिक संस्मरण की बात करूँ तो उस रात्रि को कैसे भुला सकता हूँ जिसका स्मरण आते ही हम दम्पति के रोंगटे अभी भी खड़े हो जाते हैं।

19–20 जनवरी 1990 ई. की रात्रि के दस बजे का समय। जब पूरी वादी को कई दिवस से शीतलहर ने अपने घेरे में लपेटा था। लोग चादर, कम्बल, फेरन, काँगड़ी का सहारा लेकर अपने–अपने कार्यों में व्यस्त थे। कुछ एक रात्रि का भोजन करके अपने दिन की थकान मिटाने अपनी शय्या पर विश्राम करने की तैयारी में थे। कुछ टी.वी. पर चलचित्र का आनन्द ले रहे थे। सब अपने कार्य में मग्न थे। सारे निजी कार्यों में तन–मन से व्यस्त थे। किसी ने सोचा नही था कि थोड़े ही क्षणों में, इसी समय वादी की सारी मस्जिदों के लाऊड स्पीकरों से एक जुट, एक साथ, एक निश्चित समय, वह भी रात्रि के विश्राम के समय, भारत विरोधी रोष भरे नारों की गर्जना होगी। "हम क्या चाहते–आज़ादी। छीन के लेंगे–अपना हक; पाकिस्तान जिन्दाबाद; जिस कश्मीर को खून से सींचा वह कश्मीर हमारा हैं; इण्डियन डॉग गो बेक।" आदि। आकाश में नारे एकदम, एक साथ चारों ओर ऊँचे स्वर में ऐसे गूँजने लगे, मानो अभी इसी समय प्रलय आने वाला है। अकस्मात ऐसे नारे सुनने को मिलेंगे, वे भी रात्रि के समय, इसकी किसी ने कभी कल्पना नही की थी। यदि मान लें कि

इसकी गुप्त सूचना बहुसंख्यक जाति के किसी–किसी सीमित वरिष्ठ नेता या व्यक्ति तक इस घटना से पूर्व पहुँचाई गई हो पर इसमें भी सन्देह नही है, कि अधिकांश जनसाधारण अनभिज्ञ रखे गये थे। रही बात अल्पसंख्यक जाति समुदाय की। कानों में ऐसे नारे, रोष भरे शब्द, घुसते ही सब भयभीत, बेसुध, अवाक् अपने–अपने घरों के एक कमरे में सपरिवार सिमट गये। अब क्या होगा! ऐसा अनुमान लगाया जाता था कि मीलों दूर बड़े–बड़े जुलूस निकल रहे हैं जो किसी क्षण अल्पसंख्यकों के घर घुसकर धावा बोलने वाले हैं हमारा अब किसी भी समय अन्त आ सकता है। हम क्या करें राम जानें। किसके सहारे रहे प्रभु जानें!

बस इस दिवस से कश्मीर की परिस्थिति अधिक से अधिकतर बिगड़ने लगी। यद्यपि 1984 ई. से ही ऐसी भयावह स्थितियों ने अपना क्रुद्धरूप 'अनन्तनाग' से दिखाना आरम्भ किया था पर आगामी वर्षों में आतंक पूरी वादी में इस सीमा तक फैल जायेगा इसकी कल्पना हमने नही की थी।

इतिहास को साक्षी रखकर बिना दो मत के हम यह कह सकते हैं कि 1990 ई. का पूरा दशक आतंकवादियों के परिवेश में ही रहा। इस बीच बिना मज़हब देखे कई बुद्धि जीवों, वरिष्ट पदाधिकारियों को या निर्दयता से मृत्यु के घाट उतारा गया या अपहरण किया गया। यथा सम्भव अपने परिजनों को सरकारी सेवा पदों पर नियुक्त किया गया। कई 'मुखबिर' की उपाधि पाकर मृत्यु के प्यारे होते गये। राजकीय शासक जहां अपना कार्य सम्भालने का संकल्प करती वहीं उन्हें निस्सहायता, बेबसी, अविश्वास, कम्पन का सामना करना पड़ता। साधारण जनता पिसती गई दोनों ओर। एक ओर आतंकवाद का भय, दूसरी ओर अर्ध सेना (बी.एस.एफ., के.ए.पी, सी.आर.पी.) द्वारा क्रैकडाऊन, मारपीट, घरों के भीतर घुसकर तलाशी आदि चालू था। सारी जनता बच्चे से लेकर वृद्ध तक

परेशान ही परेशान। जो बच्चा–बच्ची युवक–युवती, वृद्ध अपने कार्य हेतु प्रातः घर से निकलते पुनः घर लौटने की सम्भावना कम होती थी। विद्यालय, कार्यालय प्रायः हड़ताल करने की आज्ञा के आज्ञापालक बने रहते। जिस दिन कार्य आरम्भ होता, दिन के एक दो बज़े तक पुनः बन्द करना पड़ता। आतंकवादियों का आधुनिक शस्त्र कंधे थामे, निडर, निर्भय, खुलेआम फिरना एक साधारण दृश्य रहा करता। कहां किस प्रकार का विस्फोट होगा, कहां बम, मार्टर गोले, गोलियाँ चलेंगी, कौन किसके ज़द्द में आयेगा, कुछ पता नही, कोई नही जानता।

इस स्थिति में जहां बहुसंख्यक जाति का विशेषकर उनमें से उच्चपदाधिकारियों एवं व्यापारियों आदि का बहुत मात्रा में पलायन करके जम्मू–दिल्ली के अतिरिक्त विदेशों में यथा संभव निवास करना आरम्भ हुआ, भला हतोत्साह अल्प जाति–वर्ग क्या करती! उनका भी पलायन करना आरम्भ हुआ। रातों रात अधितर मकानों पर ताले चढ़ते गये। लोग अपने पूर्वजों एवं अपनी कठिन परिश्रम से एकत्रित की हुई चल–अचल सम्पति त्यागने पर विवश हुए।

अपने परिवार को बचाना था। जहां इतनी, इस हद तक घोषणा होती रही "हम क्या चाहते आज़ादी –'**बट्औ रोस्त बट्न्यौ सान।**' अर्थात कश्मीरी पंडित पुरूषों के बिना उनकी पंडितानीयो समेत" वहां अल्प जाति मुट्ठी भर हिन्दू जाति क्या न करती, सिवाय पलायन के! आदर आबरू बचाने के लिए अपरिचित स्थान विस्थापन का जीवन बिताने पर विवश होना पड़ा। अपने बड़े–बड़े खुले खेत खलिहान त्यागने पड़े। आयु भर के प्यारे पशु या तो पड़ोसियों को सौंप दिये या रस्सा खोलकर ईश्वर के नाम उसी विधाता के नाम स्वरूप अपने भाग्य पर छोड़ना पड़ा। अपने बच्चों की खुली पुस्तकें वहीं कमरों के फर्श पर छोड़कर विस्थापित बनना एक रिफ्यूजी

का जीवन जीना कौन चाहता है? सब स्थान, सारे कश्मीर में 'मरता क्या न करता' का प्रश्न था। वरना अपना नीड़ कौन त्यागना चाहेगा। विचार करने की बात है।

एक ओर पलायन करना जोर पकड़ता गया दूसरी ओर प्रशासन तथा कुछ राजनीतिक पार्टियों द्वारा विस्थापितों हेतु जम्मू, दिल्ली आदि स्थानों में शिविर खुलते गये। भिन्न-भिन्न पार्टियाँ आवश्यक सामग्री सहायता करने हेतु उपस्थित होते गईं। स्थिति इतनी बिगड़ी कि रातों रात लोग अपना घर अपनी सम्पति छोड़ पलायन करने पर विवश हुए। जो कश्मीरी 20^0, 25^0 सेलसियस में पला करता था वही अब 40^0, 43^0 सेलसियस में झुलसता गया। वह भी शिविरों में, मन्दिरों के बिन छाया प्राँगणों या एक कमरे वाले किराया के मकानों में। मरता क्या न करता! विवशता थी। आन, शान, जान, आबरू बचानें के लिए एक ऐसा बलिदान देने को तैयार हुए थे। उनके मन में विश्वास था, संकल्प था कि जहाँ धूप होती है एक समय वहाँ छाँव भी आती है। ऐसे नरक के दिन कभी न कभी किसी भी प्रकार कट जायेंगे। आबरू बच गई सब बच गया।

हमारा मोहल्ला भी खाली होता गया। आस-पास के पड़ोसी चले गये। फिर भी हम दम्पति ने कुछ दिन और अपने ही मकान में टिकने का परामर्श किया। सोचा, देखते हैं स्थिति क्या करवट बदलेगी। हम रूकते रहे पर स्थिति में कोई सुधार की किरण, कोई आशा न दिखती गयी अपितु कई बुद्धिजनों की हत्या की सूचनायें सुनने को मिलती गईं।

अन्त में विवश होकर ग्यारह अप्रेल 1990 ई. प्रातः नौ बजे अपने मकान की ओर, अपने प्रिय आवास स्थान की ओर एक अश्रुपूर्ण दृष्टि डालकर हमने जम्मू की ओर प्रस्थान किया। जम्मू दस घण्टे में पहुँचते हैं पर हमारा सफर दो दिन का

रहा। इन्द्रदेवता ने हमारे स्वागत हेतु वर्षा बरसा कर दो तीन स्थानों पर मिट्टी पत्थर बिछाकर आवागमन का मार्ग बन्द किया था। ऐसे वैसे जम्मू शहर तो पहुँचे। अब जायें तो जायें कहाँ! केवल एक सज्जन का नाम सूझा। यह हमारे मकान में तीन वर्ष किराया पर रहे थे। चार मास पहले डर के मारे सारी सम्पति छोडकर जम्मू पलायन किया था। ईश्वर कृपा से उसकी सारी सम्पति दो मास पूर्व उसके मीरा साहब जम्मू पता पर भेजने में मैं सफल हुआ था। हम उनके पास चले गये। हमारा अतिथि सत्कार हुआ। एक सप्ताह इनके यहाँ रहे अब अपने लिए किराया का कमरा ढूढँते रहे। बड़ी दौड़ धूप करके एक कमरा मिला वह भी मीरा साहब से दो किलोमीटर दूर 'तालीमोर' में। फिर 'मरता क्या न करता' 'डूबते को तिनके का सहारा' समझकर कमरा किराया पर लिया।

हम शहर के थे, गाँव के निवासी बन गये। नयी जगह, नया वातावरण, नया जलवायु, नये लोग, नया तापमान जो न कभी सहन किया था, सहन करना पड़ा। शौचालय ढूँढा तो खुले खेत का संकेत मिला। रसोई घर चाहा तो बरामदा मिला। पानी मिला ट्यूबवेल का। धन्य है बिजली मिली।

याद आ रहा है उस पहले दिन की संध्या का समय। मेरी धर्म पत्नी बरामदे में भोजन बनाने गयी थी। मैं लगा कमरा साफ करने। थोड़ी बहुत गृहस्थी खरीदी थी तथा एक चारपाई भी खरीदी थी। सुना था जम्मू जैसे गर्म स्थानों में नीचे भूमि पर नही सोते हैं। खतरा होता है कीट कीटाणुओं का। मैं लगा कमरा साफ करने। चारपाई लगाने। सहसा मेरी दृष्टि दो नन्हें जीवों पर पड़ी। खूब इधर–उधर फिरते नाचते थे। मैं डर गया इनको सर्प की आकृति का देखकर। मैंने सोंचा यह सांप के छोटे–छोटे बच्चे हैं। शायद कमरे में सर्प का बिल है! पर क्या करता। सायं काल था। रात्रि का समय आने वाला था। पत्नी से छिपते–छिपाते मैंने एक थैली लाई।

झाड़ू से इन दो बच्चों को कांपते हाथों तथा थरथर्राते हुए थैली में डालने में सफलता पाई और दूर 'नालापार' छोडकर आया। अब रात्रि भर आराम भाग्य में कहां था! बाहर सड़क से किसी ने मुँह से या होठों से सीटी बजाई। मैं सहम गया शायद सॉप ने चेतावनी बजायी। सहमे सहमें पत्नी को बिना किसी आशंका के रात बिताई। पर दूसरी प्रातः क्या ज्ञान था कि ऐसे कई जीवों से पुनः मिलन होगा। ये छिपकलियाँ थीं। बिना भय कमरे में हीं नही अपितु हर स्थान अधिकार जमाये जहां चाहे, जब चाहे फिरती रहती थीं।

अनभिज्ञ मैंने दो नन्हें जीवों को एक सम्पन्न परिवार से पृथक किया था। इस पाप का शोक अभी भी है तथा सर्वदा प्रायश्चित करता रहूँगा।

जी हाँ; सुना था गाँव में नगर का वासी एक अजूबा बनता है। सत्य है। हम भी बनते गये। शौचालय के लिए जंगल जाये तो कब! किस समय! चारों ओर खुला खेत। कैसे जायें! वह भी हाथ में पानी का डिब्बा या बोतल लिए! हे ईश्वर! कहां लाया। यहां भी 'मरता क्या न करता' का प्रश्न। विपदा पर विपदा मिली। व्यथा किसको सुनाते! कोई अपना नही था वहां, उस समय! खैर ऐसे वैसे करके कुछ धैर्य तो बांधा! पर कुत्ते पीछा कहां छोड़ते। आगे–पीछे घेरा डाले पीछा करने, लगते रहते। यहां तक कौवों ने भी आतिथ्य भाव दिखाना आरम्भ किया। सिर ऊपर मंडराने लगते रहते। आस–पास की गायें और बैल भी हमारी ओर सिर ऊपर किये पूंछ हिलाते स्वागत में लगते थे। हाँ, मोहल्ले के निकट के कुत्तों को रोटी आदि खिला खिलाकर मित्रता बनाई थी। पर विश्वास कम था। पराईयों का बिल्कुल भी नही।

धन्य है पड़ोसी अच्छे मिले। हम एक दूसरे से मिल घुल गये। बड़े प्यारे थे सभी। हम परस्पर खूब बातें करते

रहते। समय बीतता था दोनों ओर। आभारी हैं उस मित्र के, जिसने हमारा पुराना खराब पड़ा पंखा ठीक करके दिया और ग्रीष्म के प्रकोप से हमें राहत पहुँचाई।

'तालीमोर' में दो मास बिताये। गाँव के रहन–सहन का, वहां की सुगमताओं कठिनाईयों का, सुगमताओं तथा दुर्लभताओं का अच्छा अनुभव प्राप्त हुआ।

एक कहावत है "Birds of the same feather flock together," यानि एक समान पंख वाले पक्षी एक साथ इकट्ठे मिल जुलकर बैठते हैं तथा एक साथ उड़ान करते हैं। गाँव में कितनी देर टिकते। हमें भी शहर (नगर) में रहने की सूझी। एक प्रातः नाश्ता करके कमरा ढूँढ़ते शहर की ओर निकल पड़े। कई मकानों के मुख्य द्वार खटखटाये। ढूँढ़ते ढूँढ़ते ग्रीष्म के प्रकोप में तीन बजे नानक नगर पहुँचे। धर्मपत्नी जी अब चलने में कठिनाई अनुभव करने लगी उनके तलवों पर छाले पड़ गये थे और पाँव की उंगलियाँ सूजती गयीं। धूप गर्मी में दोनों हतोत्साह होने लगे। कहीं किराया का कमरा न मिला। सहसा मेरी दृष्टि एक नानवाई की दुकान पर पड़ी। उसके पास जाकर पीने के लिए पानी की याचना की। कुछ समय ठहरकर मैंने कमरे की बात छेड़ी। यहाँ ज्ञात हुआ, निकट की गली में दो मास के लिए एक कमरा मिल सकता है। हमने विचारा कमरा बुक करेंगे। आगे क्या होगा दो मास पश्चात देखा जायेगा। कमरा बुक किया। मालिक एक सरदार जी थे। दस मिनट उनसे और उनकी बहू से क्या मिलन हुआ। इतनी आत्मीयता बढ़ गयी कि कोई आव–ताव न देखकर एकदम मैं अपनी जेब में पत्नी जी की समेटी हुई, अपने हाथों में सुरक्षा हेतु दबाई हुई, सोने की पोटली यानि उनके ज़ेवर सरदार जी की बहू के हाथ थमा बैठा। यह कहकर कि दो दिन पश्चात कमरे में रहने आ रहे हैं तो

पोटली वापिस लेंगे। यह थी मन–मस्तिष्क की अस्थिरता, मानसिक तनाव या भोलापन या ईश्वर अर्पण विश्वास।

हम चलें वापिस तालीमोर की ओर। रात बिताई। दूसरे दिन यानी चौबीस जून 1990 ई. को यहाँ एकत्र की हुई गृहस्थी की गठरियाँ बाँध लीं। कमरे के स्वामी तथा पड़ोसियों का आभार प्रकट करके उनसे विदा ली। मध्याह्न एक बजे एक ट्रक (लोड़ कैरियर) किराया पर लाकर सारी गृहस्थी उस पर भर दी। चार बजे नानक नगर की ओर प्रस्थान करने का विचार विमर्श हुआ। पर ड्राईवर साहब को विचार आया कि शहर में इस समय ट्रक चलाना वर्जित है अतः अब छः बजे निकलने का निर्णय लिया गया। कमरा तो छोड़ा था, ट्रक नहर किनारे एक कच्ची सड़क पर खड़ा किया गया। ड्राइवर साहब को अपने घर की सूझी। मुझे अपना पता बताकर छः बजे लौटने का वचन देकर चला गया। उसके भी चलने पर हम दम्पति सहमे सहमे परदेश की सड़क पर रह गये अब। कभी देखते रहते ट्रक की ओर, कभी ताकते रहते कच्ची सड़क की छोर को। समझिये हम दोनों बन गये थें आने जाने वालों के लिए ट्रक समेत एक प्रदर्शनी। जो भी चलता, प्रदर्शनी की ओर बिना टिकट दिये दर्शन कर न जाने दिल में क्या–क्या सोंचकर आगे की ओर पग बढ़ाता।

सामने एक डॉक्टरी दुकान थी। उस पर भी कुछ समय ठहरे। ईश्वर की कृपा इसी दुकान के ऊपर हम जैसे विस्थापित का कमरा था। पूरा परिवार दो कमरों में रहता था। हमारी दशा पर दया आकर उन्होंने हमें अपने पास बुलाया। 'अतिथि देवो भवः' का सत्कार किया। आभारी हैं हम उनके।

साढ़े छः बज गये, ड्राईवर साहब के न आने की चिन्ता में मैं डूब गया। खुदा–खुदा करके ड्राईवर साहब सात बजे पधारे। प्रसन्नता से हम ट्रक पर सवार हुए। ड्राईवर

महाशय ने स्टेयरिंग पकड़ी। गाडी का गियर क्या दबाया कि पिछला दाहिना पहिया कच्ची गीली सड़क के गड्ड़े में पूरा धंस गया। मैं लगा पत्नी जी का ढ़ाढ़स बंधाने और नीचे उतरा पहिया देखने। पहियां दिखे ही ना। क्या करता! मैं लगा अपने भाग्य को कोसने। कहाँ कश्मीर का बीस डिग्री तापमान और कहाँ जम्मू का चालीस डिग्री का जानलेवा तापमान। किसको दोष दूँ! क्या कहूँ? कश्मीर से भागा, तालीमोर ने पकड़ा। आकाश से गिरा खजूर पर अटका। न इधर का रहा, न उधर का। ड्राईवर महाशय गये क्रेन लाने। कहा अभी आऊँगा। एक घण्टा बीत गया, वे नही पधारे। मैं गमगीन हतोत्साह उसके दिये पता पर उसे ढूँढ़ने निकला। पूछते–पूछते कई गलीकूचों के मोड़ काटते वहां का गरदा खाते आखिर घर तक पहुँचने में सफलता मिली।

आँगन द्वार खोजते ही मैं विस्मित हो उठा। देखा–महाशय अपनी भोजन भरी थाली पर खूब झपट पड़े हैं। पास बैठे दो आदमियों के साथ बातें भी कर रहे हैं। बड़ी गिलास में रखी लस्सी पेट पर हाथ फेरते, डकार लेते, मुँह की ओर ले रहे हैं मुझ पर नजर पड़ते एक साधारण सी आवाज में बिना कोई संजीदगी दिखाये या हमारी विवशता पर कोई परवाह दिखाये बोल पड़े, "साहब कोई क्रेन नही मिली अब कल प्रातः जायेंगे। आप ट्रक में बैठो। मैं भी आऊँगा।"

मैं वापिस निकला। गलीकूचों से गुजरते अपने मन की गहराईयों से केवल इन शब्दों से अपने आपको सांत्वना देता गया कि अभी जवान है। अभी पचास पार नही किये हैं यह क्या जाने 1947 ई. का हाल। दोनों ओर की उथल पुथल, उपद्रव, भागदौड़, क्रुर जलन, आगजनी, लूटमार, मार कटाई और अपनों से विरह। अपनों से बिछुड़ने का, घर के त्याग का, वतन से बिछुडने का विरह, वियोग, तड़प। सम्भवतः इसने अपने माता–पिता से या अन्य बन्धुओं से भी नही सुना है जो

स्वयं इसके शिकार बनकर यहा आये हैं अब। अनभिज्ञ है हिन्द, पाक के बंटवारे के दुख से यह मेरा ड्राईवर महाशय।

मैं पहुँचा ट्रक के पास पत्नी जी को व्याकुल पाया सड़क किनारे। उन्हें व्यथा सुनाकर आतिथ्य के घर वापिस भेजा। वे लोग भी हमारी दुर्दशा पर व्याकुल हुए। पुनः सहृदय हमारा आतिथेय सत्कार हुआ। कोई और उपाय न सुझकर मैं गया रात अब ट्रक में बिताने। कम्बल निकालकर बैठ गया ट्रक के बीच में। कृष्ण पक्ष में लगा आकाश के तारे ढूँढ़नें कुछ गुनगुनाने लगा ताकि कोई पथिक चले; उसे लगे ट्रक में खुले पड़े सामान की देखभाल करने वाला भी कोई है। आँख लगने लगी, नही लगने दी। नेत्र मूंदने लगे तो देखा पत्नी जो खिड़की से मेरा हाल पूछने आयी हैं उन्हें सांत्वना से वापस कमरे में विश्राम करने का संकेत दिया। क्या करती! वह भी परेशान थी। रात्रि के ग्यारह बज गये। हमारे भाग्य में विधाता ने कुछ और भी लिखा था।

देखा पूरा आकाश घने मेघों ने घेर लिया है भयावह मेघाच्छादित आकाश में चारों ओर से गड़गड़ाहट ऐसी आ रही थी कि लगने लगा अब खैर नही। पूरा आकाश बरसेगा। यही सोंचते-सोंचते चारों ओर से बिजली का प्रकाश बुझ गया। सन्नाटा छा गया। ईश्वर का धन्यवाद इतने ही समय में ड्राईवर जी तरपाल लेकर आये। जितने सामान पर तरपाल फैल सका, फैला दिया। मुझे मेरे हाल पर छोड़कर स्वयं चला गया। वर्षा आई, इतनी बरसी जैसे कमी न बरसी हो। मुझे लगा ईश्वर वर्षा के रूप में आज शायद मुझसे जन्म जन्मान्तरों का बदला लेने आये हैं। मैं सहमा सहमा कम्बल ओढ़े ट्रक के बीच सिकुड़ गया। चारों ओर वर्षा। हर दिशा आकाश में कड़कती चकाचौंध मचाती बिजली। मैंने थोड़ा ऊपर सिर उठाते तिरछी दृष्टि से आकाश की ओर देखने का साहस क्या किया कि देखता हूँ ट्रक के केवल एक-दो फुट की ऊचाई

पर कई हाई टेंशन तारें आकाश में बिजली प्रकाशित होने पर चकाचौंध मचाती मेरा विरोध करने तैयार हैं। पास एक विद्युतगृह होने पर वे मुझसे कहती है– 'देख तमाशा हमारे निकट प्राँगण में रात का बसेरा ढूँढ़ने में। अब तेरी खैर नही।' मैं केवल अब घुटनों के बीच अपना शीश छिपाकर क्षमा याचना करने लगा। ईश्वर से मेरे प्राण बचाने की भीख माँगता रहा। कुछ क्षण पश्चात अपने में धैर्य लाकर मैं ट्रक से बाहर आया और ड्राईवर की सीट (स्थान) पर सिमट गया यहाँ बेबस बैठ; आकाश के अंधकार को चीरती हुई विंड शील्ड से टकाराकर अपने पास आने वाली प्राणलेवा बिजली का, न चाहते हुए भी मुझे स्वागत करना पड़ता। हाई टेंशन की तारों से अपने नेत्र चुराता हुआ मैं अपने भाग्य पर व्यंग्य मारता रहा। ईश्वर से अपने पापों की क्षमा याचना करता रहा। सोंचता था बस शायद यही मेरी अन्तिम रात है।

आकाश का क्रूर रूप देखकर ऐसा लगता था कि वर्षा दो–तीन दिनों से कम थमने का नाम न लेगी। पर **"जिसे राखे सांईयाँ मार सके न कोई।"** दूसरे दिन प्रातः आठ बजे तक सारा आकाश चारों ओर स्वच्छ पाया। धूप इतनी निकल आई कि तापमान ने भी अपनी शक्ति दिखाना आरम्भ किया। सूर्य देवता अपनी शान दिखाते आकाश में चमक पड़े। ऐसा लगता था कभी वर्षा हुई ही नही थी। पृथ्वी माता ने अपनी सहनशीलता का प्रदर्शन करते रात भर की वर्षा अपने कोख में सभाली थी। सारी भूमि खुश्क थी।

पण्डित साहब भी मेरा हाल पूछने आये। घर बुलाकर चाय नाश्ता कराया। आभारी हैं हम उनके। रात भर उनकी पत्नी मेरी पत्नी को सांत्वना देती रही थी। ईश्वर की दया से ड्राईवर साहब दस बजे क्रेन लेकर आयें। एक ही झटके से क्रेन ने ट्रक को सड़क पर खड़ा किया। हमने सबका आभार प्रकट कर उनसे विदा ली और ट्रक पर सवार हुए नानक

नगर की ओर चल पड़े। मैं जहां तक हो सका उन हाई टेंशन तारों की ओर अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपना आभार प्रकट करता रहा। उन्होंनें मुझे रात भर मौत की चेतावनी देकर डराया तो था पर तरस खाकर जीवनदान भी दिया। मुझे छेड़ा नही।

ड्राईवर महाशय ने कृपा की। तीस मिनट में नानक नगर पहुँचाया। कमरे के स्वामी सरदार जी ने स्वागत किया। नेक और मिलनसार निकले। अभी भी बीस वर्ष से उनसे सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। इस अनुभव से मैं इसी निर्णय पर पहुँचा कि चलो अन्त भला सो भला। पर उस रात का स्मरण आते ही हमारे–रोंगटे खड़े हो जाते हैं तथा यही प्रार्थना करते हैं कि ऐसी रात्रि किसी के भाग्य में न हो! वास्तव में वह एक कालरात्रि थी। ऐसी कालरात्रि की छाया भी किसी के भाग्य में न आये यही कामना करते हैं।

31

पुलहोर पॉतव त, फ्यूह

(कश्मीर सम्बन्धित एक संस्मरण)

पुलहोरः— धान के सूखे घास से लम्बी रस्सी बनाकर बुना हुआ झालीदार चप्पल रूपी पांव का पहनावा। पूले–घास के जूते।

पॉतवः— तीन–चार इंच चौड़ा लगभग एक मीटर लम्बा ऊनी गर्म कपड़ा जो टाँगों गिर्द गर्मी हेतु लपेटा जाता है।

तॅः— और।

फ्यूहः— लकड़ी का लम्बे डण्डे वाला, हृदय की आकृति का बनाया हुआ एक चप्पा।

दिल्ली की पाठशालाओं के लिये ग्रीष्म कालीन अवकाश की घोषणा होने पर दादा–दादी के पोते–पोतियों ने उनके निवास स्थान कश्मीर जाने की पहले से ठान रखी थी तथा इस विषय में पहले ही सारा प्रबन्ध भी कर रखा था।

ऐसा ज्ञात होने पर दादा–दादी फूले नही समाये। घर का बड़ा कमरा साफ सुथरा तैयार रखा गया। खिड़कियों पर नये परदे चढ़ गये। कुशन कॅवर और डोर मैट सब नये खरीदे गये। चार वर्ष पहले झाड़े गये कालीन पर पुनः बाँस के डण्डे पुलीस के डण्डों की तरह बरसने लगे। दो–तीन किलो गरदा बाहर डस्टबिन के भाग्य में लाया गया। किचन पर विशेष ध्यान देकर उसकी भी पूर्ण रूप से सफाई की गयी। बाकी कमरों की ओर ऊपर–ऊपर से ही ध्यान देकर सफाई की

गयी। सोंचा, बेचारों को इतनी फुर्सत कहां कि कमरे कमरे फिरेंगे।

बच्चे घर आये। घुसते ही हर्षोल्लास सारे कमरों के द्वार खोलते गये। चार वर्ष पहले यहां छोड़ी हुई वस्तुओं का परीक्षण हुआ। कभी प्रसन्न, कभी नयन भर आँसू। सम्भवतः सोचा होगा अपना घर है कहां मिलेगा। पहले परमात्मा को शुक्र फिर दादा–दादी का जिन्होंने अपनी जान हथेली पर रखकर यह मकान बचाया–घर बचाया।

मित्रों–सहेलियों का पूछने ही वाले थे कि वे भी एक–एक करके आन पड़े। एकाएक पन्द्रह–बीस बच्चे एकत्र हुए। पड़ोसी महिलायें भी प्रसन्नचित बच्चों का स्वागत हेतु आईं। कोई मौसी बनी, कोई बुआ और कोई चाची। सबसे मिलन हुआ। सबका स्नेह मिला।

बच्चियों ने किचन पर धावा बोला। दादी की आज छुट्टी। दादी ने पहले ही मनभाता पकवान तैयार रखा था, यह देखकर सब चकित हुए। तो देर किसकी! सारे पकवान पर टूट पड़े। एकदम सारा पकवान चटकर गये। थालियाँ–प्लेट चटाचट साफ सुथरे धुलकर शल्फों पर शोभायमान होते गये। दूसरी ओर कमरा प्रदर्शनी बन गया। कहीं अटैचियाँ, कहीं पानी भरी बोतलें। कहीं मोबाइल, कहीं लैपटॉप तथा टैबलेट, मैगज़ीन आदि। कुरकुरी, चिप्स हाथों में लिए मोबाइल, कैमरा द्वारा चित्र पर चित्र खिंचने लगे। दिन भर पूरी मौज–मस्ती रही। संयोग से कश्मीर की पाठशालाओं में भी इन दिन अवकाश चल रहा था। इनके माता पिता ने भी ऐसे अवसर को गनीमत समझा। सोचा; यहां पर हमारे बच्चे प्रायः आये दिन हड़ताल की कालों से तंग आ गये हैं। दिल शिकस्त हुआ है यहां हमारे बच्चों का। स्वच्छ, खुला वायु, खुला वातावरण पाने के लिये बेचारे तड़प रहे हैं। दिल की शान्ति चाहते हैं, ये

हमारे बच्चे। दिल्ली वालों के साथ कुछ दिन शान्ति से निकालें तो कितना भाग्य होगा!

बच्चों का सैर सपाटा होता रहा। प्रोग्राम पर प्रोग्राम बनते गये। फरमाइश के लिस्ट पर लिस्ट बनते गये। धन्यवाद! कश्मीर इन दिनों किसी हड़ताल की काल से बच गया। यह एक अचम्भा रहा, पन्द्रह दिन।

दोनों ओर के बच्चे सयानें दिखे। बुद्धिमान सिद्ध होंगे ऐसा अनुमान लगाया गया। अंग्रेज़ी बोल चाल में जिह्वा लपालप चटकीली टॉप क्लास फिरती जाये। हिन्दी–ऊर्दू में कहीं ठहराव आये। मातृभाषा कश्मीरी में पूर्ण विराम लगे इसे समझने बोलने में मानो गतिरोध लगे। पर संसार की सच्चाईयों से पूर्ण सूचित हैं।

भाषा की परख में दादा जी सोच में पड़ते दिखे। सोचते हैं:– क्यों ऐसा हो रहा है? हमारे तो हमसे दूर हुए। भिन्न वातावरण में रहे, पर यहां के बच्चों का क्या हुआ ? क्यों रहते हैं टूटी–फूटी मातृभाषा में। प्रोत्साहन देना है दोनों ओर। लौटाने हैं अपने रहन–सहन। खाने पीने के ढंग। लौटानी है अपनी मातृभाषा अपनी जिह्वा पर। स्वतन्त्र होकर भी कितनी देर रहेंगे विदेशी भाषा की परिवृति में! क्यों करें! क्यों सहे! अपने अस्तित्व का परिभव! क्यों खोये अपने देश को और अपनायें परदेश को! क्यों अनुभव करें स्वदेश में अवर (inferior) और प्रदेश में प्रवर (superior)!

राष्ट्रभाषा या मातृभाषा बोलो– तो हिचकिचाहट। विदेशी बोलो– तो तोता! क्या यही उचित है, सब में परिवर्तन लाना है। माता–पिता का निजी कर्तव्य याद दिलाना है।

बच्चे अपनी मस्ती में रहे। दादी–दादा सेवा में रहे। दादी न छोड़े चौका। दादू न छोड़े बाज़ार। दोनों सन्तुष्ट। बच्चे आये हैं। आजकल यहां–वहां का ताँता बँधा रहता है घर में।

कुछ दिन पश्चात फिर चले जायेंगे और फिर हमारे लिये आयेंगी वही अंधेरी अकेली रातें। वही फीकापन, वही बेबसी। इस सोच में विलीन दादा जी अपने कमरे के बाहर सोच परिवर्तन के लिए क्या निकले कि बच्चों के कमरे से एक बच्चे की आवाज़ सुनाई दी– "अरे रूठा है। दादा जी की फेवरेट पिला दो।"

"दादा जी की फेवरेट।" भला मेरी फेवरेट क्या हो सकती है ?

दादा जी विस्मय, जिज्ञासु, देखने कमरे के भीतर बड़ी बुद्धिमता से, बड़ी विनम्रता से द्वार पर दस्तक देकर आये।

देखा; कि उनका 'ग्लुकोन डी' एक किलो का डिब्बा शीशे के जग में शरबत जूस बनकर नये डिजाइन के गिलासों द्वारा बच्चों के नर्म कंठों उतरकर उनकी प्यास बुझा रहा है। रूठे बच्चे को इसी से मनाया भी जा रहा है।

"वाह रे मेरी फेवरेट 'ग्लुकोन डी' अब तू ही हो सकती है मेरी फेवरेट। जवानी गई। अब तेरा ही है आसरा। दादा जी को मन नही मन जवानी के दिन याद आने लगे।

'ग्लुकोन डी' का डिब्बा दादा जी की अलमारी से उछाल मारकर बच्चों के हाथ कैसे लगा था यह राज़ ही रहा। इसी बीच दादा जी का पोता जो खिड़की से पड़ोस के नये निर्माण किये मकान के ऊपर नये रंग–ढंग की टीन की चादरें चढ़ाने का तमाशा देख रहा था, सहसा कह उठाः–

"दादा जी— दादा जी। आपने इस मकान पर ऐसी चादरें क्यों नही बिछाई हैं? देखो; हमारे पड़ोस के कई मकानों के छत नीले, हरे, लाल आदि रंगों से कैसे सुशोभित दिखते हैं। दिल करता है इनकी ओर देखते ही रहे। दिल्ली में ऐसा दृश्य भी देखने को नही मिलता है। कश्मीर के नदी, नालों, झरनों, बाग बगीचों पर्वतों की बात तो स्वपन में भी नही सोच सकते हैं। आह! वाय! हम क्यों नही यहीं पर निवास करते जायें।

दादा जी ने बच्चे की जिज्ञासा को जानते हुए उसके सिर पर अपना दुलार भरा हाथ फेरते हुए कहा:— "बेटे; यह मकान नये बन रहे हैं। आधुनिक डिजाईन के, नवीन ढंग के विशेष टेक्नॉलोजी से बनाये जा रहे हैं। हमारे समय में वही टेक्नॉलोजी थी जो इस मकान में है। बच्चो; यह समय—समय की बात होती है। संसार के साथ—,साथ भारत भी बदला और साथ ही बदल गया हमारा कश्मीर भी।"

दादा जी ने बच्चों को कश्मीर के प्राचीन इतिहास के विषय में संक्षिप्त में परिचय देना उचित तथा अनिवार्य समझा। इसके लिए उन्होंने बच्चों को प्रोत्साहित किया तथा अपना भाषण आरम्भ किया:—

बच्चो। क्या आप जानते हैं कश्मीर की उत्पति कैसे हुई है?

सुनो— अतीत काल में सारा भू मण्डल पूर्णरूप से जलमय था। हमारा आज का यह स्वर्ग जैसा कश्मीर भी आज से करीब पाँच हजार वर्ष पूर्व एक विशाल झील था।

'नीलमत पुराण' जो कश्मीरी पंडितों का प्रमुख धर्म ग्रंथ है के अनुसार यह झील अतीतकाल में 'सतीसरस' के नाम से जाना जाता था। इस झील में और इसके सभी किनारों की पहाड़ी भूमि पर असंख्य यक्ष, पिशाच और नाग लोग रहते थे।

जिनका मुखिया जलोद्भव या जलोदर नामक एक विकराल दैत्य था। यह दैत्य लोगों को भिन्न–भिन्न प्रकार के कष्ट देता था तथा जी चाहे इनका भर पेट आहार करता था। लोग अति संकट में थे। वे बहुत त्रस्त थे। वे किसी भी प्रकार इस भयंकर दैत्य से छुटकारा पाना चाहते थे। अपनी इस वेदना के निवारण के लिए वे कश्यप ऋषि की शरण गए। ऐसा जानकर लोगों के इस संकट के मोक्ष हेतु प्रजापति कश्यप ऋषि जी ने यहां आकर घोर तपस्या की। तीनों देव ब्रम्हा, विष्णु तथा महेश इन पर अति प्रसन्न हुए।

जग जननी शारिका ने मैना का रूप धारण किया। अपनी चोंच में एक कंकर उठा लाई और जलोदर के निवास पर गिराया। यह कंकर गिरते–गिरते पर्वत बनकर उस धूर्त राक्षस पर गिरा और उसका नाश हो गया। पर्वत के गिरने के कारण भूमि उभर आई और सर का पानी बरामुला की ओर ओर बह गया। इस भूमि का नाम 'कश्यप मुर' पड़ा। यही शब्द बिगड़ते–बिगड़ते 'कश्मीर' और 'कशीर' हो गया। हम कश्मीरी इसे सादर 'मॉज कशीर' कहते हैं।

"ऐसा तो हमने कुछ–कुछ पहले पढ़ा है पर इतना सारा अब याद नही आ रहा है। और कोई रोचक कहानी सुना दो– दादा जी।" बच्चे कह उठे।

दादा जी भी एक अनुभवी दादा थे। उनके लिए आज के विषय की भूमिका भी इसी में निकल आई। वे बोलेः–

"देखो बच्चो– क्योंकि आप यहाँ के मकानों के छतों के विषय में बात कर रह थे तो क्यों न हम कश्मीर के प्राचीन काल के छतों पर भी कुछ चर्चा करें। क्या आप लोगों को मालूम है पुराने समय में कश्मीर के छतों से ज़ीरा मिलता था।"

"ज़ीरा मिलता था! ज़ीरा मिलता था! कौन सा ज़ीरा जो सब्जी में डालते हैं। क्यों चिढ़ा रहे हो हमको दादा जी? पूरी कहानी सुनाओ ना।" बच्चे उत्सुक जिज्ञासु कह पड़े।

दादा जी ने अलमारी से भोजपत्र निकालकर कहानी आरम्भ की।

"देखो बच्चो जब मकान की दीवारों का काम यथा शक्ति पूर्ण होता तो सबसे पहले उन पर भार सहने वाली सशक्त कड़ियाँ बिछाई जाती और उन पर मोटे और लम्बे फट्टे ठोके जाते। फट्टों के ऊपर भोजपत्र बिछाये जाते और इनके ऊपर चिकनी मिट्टी की एक परत (तह) में बिछाई जाती। सम्भवतः मिट्टी पर ज़ीरे के दाने बिखेरे जाते जो मिट्टी में दबकर प्राकृतिक रूप से घर वालों के लिए प्रति वर्ष ज़ीरे की उपज का उपहार लेकर आते। और हमारे प्रसिद्ध पकवान की सुगन्ध में चार चाँद लगाते। इतना ही नही इसके अतिरिक्त एक देन और भी हुआ करती जिसे कश्मीरी में 'चरि लछ्िज ब्योल' कहते थे। यह छोटे–छोटे हरे पौधों पर सरसों के फूल रूपी पीले फूल होते थे। इन फूलों का काढ़ा बनाकर ज्वरग्रस्त रोगी को पिलाया जाता। कई दिनों का ज्वरग्रस्त रोगी एक दो दिन में स्वस्थ बनकर चलने फिरने लग जाता।"

अच्छा जी! यह थी मिट्टी के छत की देन। काश! आजकल भी ऐसे छत होते तो हम थैली भर ज़ीरा एकत्र करते और सबमें बाँट देते। पर हम काढ़ा नही पीते– बच्चे चिल्लाये।

वाय! कश्मीरी होकर भी हमने कभी बर्फ गिरने का तथा इसे अनुभव करने का अवसर प्राप्त नही किया। दिल्ली के बच्चों की एक 'आह' निकलीं। सब बच्चे हर्षोल्लास भोजपत्र को हाथ में घुमा घुमाकर इसे परखने लगे। तथा इस सम्बन्ध में उनके प्रश्नों का उत्तर दादा जी देते गये।

"नही बेटे! इसके अब प्रयोग में न लाने के कारण इसकी उपलब्धिया अब बाज़ार में नही है। अब यह या तो किसी संग्रहालय में या अपने वातावरण नौ हज़ार फुट समुद्र तट की ऊँची अपनी वृक्ष–जाति की बस्ती में मिलेंगे। जहां से मैं इसे लाया हूँ। सहर्ष आप एक– एक पत्र बाँटकर दादा की याद अपने पास रख सकते हो। "एक प्रश्न का उत्तर मिला। आपको ज्ञात होना चाहिये कि कश्मीर का जलवायु बहुत ठंडा होता था। तापमान दिसम्बर मास से मार्च तक प्रायः शून्य से कम रहता था। गर्मियों में ठंडी रहती थी। किसी घर में पंखे, फ्रिज नही होते थे। न कूलर, एयर कन्डिशनर का नाम हम यहां नहीं जानते थे ऐसे उपकरणों की हमको आवश्यकता नही होती थी। शहरों में पाँच छः फुट ऊँची बर्फ पड़ती थी जबकि गाँव और पर्वतीय स्थानों में नौ दस फुट ऊँची बर्फ जम जाती थी। सर्दियों में छतों के किनारों पाँच–छः फुट लम्बी लम्बी बर्फ की जमी हुई कलमें लटकती थी। जिन्हें कश्मीरी में 'शिशर गाँठ' कहते थे। चार पाँच मास के लिये गर्मियों के दिनों सब्जियाँ सुखाकर रखते थे। यह मास सर्दी के प्रायः होते थे और कुछ उपज नही होती।

मकान तीन–तीन मंज़िल के होने पर सर्दियों में घर परिवार निचले मंज़िल में ही वास करता था इसे 'वोटॅ' कहते थे तथा गर्मियों में ठंडी ठंडी वायु खाने के लिये तीन चार मास ऊपर के मंज़िल में वास करते थे। इसे 'कॉनी' कहते थे। दोनों मंज़िलों में पृथक रसोई घर होते थे। बर्फ या वर्षा में पाँच छः इंच ऊँचाई के लकड़ी के खड़ाऊँ पांव में पहनते थे और घर से बाहर जाते थे। सर्दियों में 'वोटॅ' में सीमित रहकर किंचन में दिन भर चूल्हा जला रहता और नाना प्रकार पकवान का सेवन होता।"

"जब इतनी बर्फ गिरती तो क्या मकान बर्फ के बोझ तले दबते नही ?" बच्चों ने प्रश्न किया।

"नही दबते; इसका भी उपाय हुआ करता था पर इसकी व्याख्या के लिये आपको तीन शब्दों का उच्चारण करना पड़ेगा।" दादा जी बोले।

"शीघ्रता से बोलो ना दादा जी। हम तैयार हैं।"

दादा जीः– बोलो– पुलहोर

बच्चेः– पुलहोर– पोलहोर (अन्त में) पुलहोर

दादा जीः– बोलो. पॉतव

बच्चेः– पातव– पोतव (अन्त में) पॉतव

दादा जीः– बोलो– फ्यूह

बच्चेः– फयोह– फयुहू (अन्त में अभ्यास के प्श्चात) फ्यूह।

दादा जीः– "बच्चो; अधिक हिमपात होने पर हमारे कुछ अनुभवी युवक अपने पांवों को गरम ऊनी कपड़े से पूरी प्रकार ढाँपकर 'पुलहोर' पहनकर और टाँगों की गरमी के लिये इनके गिर्द तीन चार इंच चौड़ा करीब एक दो मीटर लम्बा ऊनी पट्टा तह के ऊपर तह लपेट देते थे इसे पॉतव कहते हैं। कमीज़ पाजामा के ऊपर कमर और कंधों को गरम लोई से सुरक्षित बाँधकर सिर पर गर्म टोपी पहनकर, हाथ में एक लम्बा फ्यूह (चप्पा) लेते थे और तीन चार की संख्या में मिट्टी के समतल छत पर चढ़कर एक दो घंटे में सारा हिम नीचे फेंक देते थे।

इससे मकान भी सुरक्षित रहते और इन युवकों की भी रोज़ी बनती थी।"

"छत तो बन्द होते। युवक कैसे छत के ऊपर चढ़ सकते थे ? दादा जी यह भी बताओ ना।" बच्चों के प्रश्न होने लगे।

"बच्चो। इसका भी उपाय होता था। छत के बीच में छोटी खिड़की रखी जाती थी। जिसे 'वोब' कहते थे। बर्फ गिराने वाले इसी 'वोब' से सुगमता से छत पर आते थे और अपना कार्य करते थे। कुछ वर्षो के पश्चात इसी के साथ–साथ सुन्दर डिज़ाईन वाले लकड़ी के छतों ने जन्म लिया। इन्हें 'सिंग्लदार पश' कहते है। यह भी बड़े शोभायमान दिखते थे। और अब हैं आपके पास नये नये फैशनों वाले नये–नये रंगों वाले 'टाटा शक्ति' आदि विभिन्न कम्पनियों के रूप वाले छत।

इसी बीच दादू जी के पहले किये गये प्रबन्धानुसार 'नूर दयद' कमरे के भीतर पधारी एक त्रामी में लवासे और डलमसाला लेकर। 'मिस्र बोब' आई सूखी मच्छलियों की फॅर (भूनी हुई मसालों से लिप्त मज़ेदार मच्छलियाँ) लेकर। 'शरीफा जी आई कश्मीरी वारिमुठ दाल लेकर। उपजीत सिंह और बबली आये छोला–पूड़ी लेकर। दादी जी प्रविष्ट हुई प्लेट पर त्येलवुर और समावार में शीर चाय लेकर। सब बीच गूँज उठे नीचे आँगन से वृद्ध चाचा कादिर के अपने सिर पर टोकरी थामें प्रवेश करते यह मीठे बोलः–

"मिश्री मक्कॉय (मकई) हा छव

खंड़ मक्काय हा छव

बुलबुल मक्कॉय हा छव

पृनिन टॉठ मक्कॉय हा छव

वलिवो टाठयो मिश्री मक्कॉय हा छव

खंड़ वाह! वाह! मकई हा छव।

(कश्मीरी शब्दार्थ):–

मक्कॉय = मकई। छव = है। बुलबुल = प्यारी।

पॅनिन = अपनी। टॉठ = प्यारी। वलिवो = आओ।

टाठ्यो = प्यारो। मिश्री = अति मीठी।

नूर द्‌यद = नूर नामी आदरणीय दादी।

शीर चाय = नमक दूध वाली एक चाय।

सबों ने अपना प्यार भरा प्रीति भोज, बच्चों के सामने रखा।

बच्चे सहर्ष कॉनी, वोटॅ, वोबॅ, पुलहोर, पॉतव, फ्यूह का उच्चारण करते पकवान का सेवन करने लगे।

दादा जी बोलेः– बच्चो; हमने मिट्‌टी के छत। पुलहोर, पॉतव, फ्यूह के दिन खो दिये और इसी के साथ–साथ अपनी कई रिवायतें भी खो दीं। परन्तु स्मरण रहे; जहाँ रहो, अपना मेल मिलाप न खोना। अपनी कश्मीरियत न खो देना। एक दूसरे के प्रति स्नेह, आदर, भ्रातृभाव कभी ना खो देना। इसे सूफी–सन्तों की भूमि बनी रहने देना। यह तुम्हारा है कर्तव्य। तुम हो इसके रक्षक। तुम ही हो उत्तरदायी।
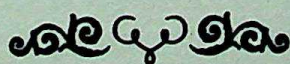
32

तुलसीदास

हिन्दी–साहित्य का काल–विभाजन सामान्यतः इस प्रकार किया जाता है:–

1 आदि काल– 769 से 1318 ई.

2 भक्ति काल– 1318 से 1643 ई.

3 रीति काल– 1643 से 1843 ई.

4 आधुनिक काल– 1843 ई. से अब तक।

भक्ति काल हिन्दी–साहित्य का स्वर्ण काल माना जाता है। इस काल की रचनाएँ काव्य–शिल्प की दृष्टि से श्रेष्ठ ठहरती हैं प्रायः सभी कवियों को काव्य शास्त्र का सम्यक् ज्ञान था। शिल्प और विषय वस्तु का सुन्दर समन्वय था तथा इस युग का पद–साहित्य संगीत की दृष्टि से भी समृद्ध है।

भक्ति काल में भक्ति काव्य सगुण काव्य धारा के राम भक्ति शाखा के महाकवि तुलसीदास जी का महान योगदान रहा है।

महाकवि तुलसीदास के जन्म स्थान के विषय में अनेक विवाद प्रचलित हैं कुछ विद्वान इनका जन्म स्थान 'राजापुर' मानते हैं और कुछ के मतानुसार इनका जन्म स्थान 'सूकर' क्षेत्र जो 'सोरों' कहलाता रहा है। पर अभी तक उपलब्ध सामग्री की परीक्षा करने से कवि का जन्म 'सोरों' में होना अधिक मतानुसार स्वीकारा जा रहा है।

कवि के जन्म स्थान के साथ–साथ इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में भी अनेक विवाद प्रचलित है। इनकी कृतियों में भी कोई ऐसा साक्ष्य नही मिलता जिससे किसी निश्चित तिथि का प्रमाण मिल सके।

एक जनश्रुति के साक्ष्य पर 'मानस मयंक' के लेखक तुलसी दास की जन्म तिथि १५५४ (1554) मानते हैं। यदि इस तिथि को प्रामाणिक माना जाये तो 'रामचरितमानस' के आरम्भ सम्वत् १६३१ (1631) के समय कवि की अवस्था ७७ (77) वर्ष की ठहरती है। जिसे प्रामाणिक नही माना जाता। यह सम्भव भी नही दिखता।

शिवसिंह तुलसीदास का जन्म सं. १५८३ (1583) मानते हैं।

वेणीमाधवकृत मूल गोसाऑीं चरित में जन्म तिथि सं. १५४५ (1545) है।

डॉ. ग्रियर्सन ने १५८९ (1589) जन्म सम्वत् माना है।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ग्रियर्सन के मत के समर्थक हैं। अतएव अन्य समर्थनों को दृष्टि में रखकर कवि की जन्म तिथि १५८९ (1589) भादों सुदी १३ (13) (शुक्ल पक्ष) मंगलवार मानी जाती है।

तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था इन्हें बाल्यावस्था में ही माता–पिता की प्यार भरी गोद से विलग होना पड़ा और इनके जीवन का प्रभात तुरन्त ही तमोमयी संध्या में परिवर्तित हो गया। घर भर में केवल एक वृद्धा दादी ही रह गयी थी।

उच्च कुल में जन्म लेने पर भी तुलसी आत्म–ग्लानि के वशीभूत होकर अपने आपको 'मंगन' कुल का बताते हैं। आरम्भ में ये 'तुलसी' के नाम से सुशोभित थे पर कदाचित

वैराग्य धारण करने के पश्चात् इन्होंने अपना नाम तुलसीदास कर लिया हो। प्रायः राम का नाम लेते रहने के कारण इनका नाम 'राम बोला' भी पड़ गया था। ऐसा 'विनय पत्रिका' में स्पष्ट है।

जाति से यह निर्विवाद ब्राह्मण थे। जीवन के उषाकाल में ही माता–पिता से वंचित होकर ये अनाथावस्था को प्राप्त हो गये। इसी कारण इनका बाल और किशोर जीवन दरिद्रता की दलदल में व्यतीत हुआ। इनके लिए चार चने भी चार फलों– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के समान थे। बाल–जीवन भिक्षा माँगकर यापन करने के कारण ही संभवतः तुलसी ने अपने को 'मंगन' कहा है। इसी समय उनके दीक्षा–गुरू से उनकी भेंट हुई। उस समय अपनी अज्ञानावस्था के कारण तुलसी का जीवन बराबर अस्त–व्यस्त ही रहा। पग–पग पर उन्हें दरिद्रता का शिकार बनना पड़ा।

इसके उपरान्त ये नरहरि गुरू के पास विधाध्ययन के लिए गए और उनकी ही प्रेरणा से इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ। दाम्पत्य–जीवन पन्द्रह वर्ष तक सुखमय रहा और फिर सुख भी काल–कवलित हो गया।

एक बार रत्नावली के मायके चले जाने पर तुलसी उस कठिन विरह को सहन न कर सके और विवश होकर मेघाच्छत्र रात्रि के अंधकार में ही चढ़ी हुई नदी को तैर कर पार किया और मिलन की सुखद कल्पनाओं में डूबे हुए स्त्री के पास जा पहुँचे। अकस्मात पति को इस प्रकार प्रेमभावुक कमरे में प्रविष्ट होते देखकर पत्नी ग्लानि में डूब गयी तथा उसने तुलसी के इस प्रेमाधिक्य पर व्यंग्य करते हुए उस दिव्य प्रेम की ओर संकेत किया जो जीव को भव–सागर से पार कर देता है।

"लाज न आवत आपको दौरे आएहु साथ। धिक–धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ।। अस्थि चर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति। होती जो कहुँ राम महँ, होति न तो भव भीति।।"

शब्दार्थः– क्या आपको मेरे पास इस प्रकार दौड़ते–दौड़ते आने में कोई लाज नही आई? हे नाथ! धिक्कार है ऐसे इस प्रेम पर। कैसे कहूँ! जैसी प्रीति आपको मेरे इस अस्थि–चर्म मय शरीर से है काश! ऐसी ही प्रीति श्री राम से होती तो इस संसार में हमारे जीवन में किसी प्रकार का कोई दुख न होता।

इस फटकार से तुलसीदास के शरीर में अकस्मात एक परिवर्तन आया। स्त्री की हृदय–विदारक और मर्मभेदी वाणी से चोट खाकर ये जीवन की ओर से विमुख और विरक्त हो गए और राम–भक्ति के पथ पर चलने लगे।

रत्नावली की व्यंग्य भरी वाणी से और जीवन की कटुता से प्रभावित होकर तुलसी वैरागी बन गये थे। इन्होंने वैराग्य–दशा और पर्यटन का अपने ग्रन्थों में विशेष रूप से वर्णन किया है। राम–कथा जो इन्होंने शूकर क्षेत्र में सुनी थी, आगे जाकर पल्लवित हुई और इन्होंने चित्रकुट; अयोध्या, काशी, सीतावट आदि तीर्थों की यात्राएँ की और सत्संग एवं शास्त्र अध्ययन द्वारा अपने ज्ञान का विस्तार किया। उनकी राम भक्ति की भावना दृढ़ से दृढ़तर होती गई और उनके राम–सम्बन्धी ज्ञान का विकास होता गया। यद्यपि वे दुर्दिनों और दुर्जनों से घिरे थे और पीड़ा से उनका शरीर जर्जर था, तो भी उनका आत्म–विश्वास बड़ा उच्च कोटि का था और वे भगवान राम को ही एक मात्र आराध्य मानकर अपना सब कुछ उन्हें ही अपर्ण कर चुके थे। इनकी भक्ति 'दास्य भाव' की कही जाती है।

उनकी आत्मा में अभूतपूर्व शक्ति आ गई थी परन्तु उन्हें सामान्य जन–जीवन की तत्कालीन परिस्थितियों से असन्तोष था। इन्होंने समाज, धर्म और नीति आदि सभी की नाड़ी की प्रत्येक गति का कुशल वैद्य की भाँति अध्ययन किया था।

इसी कारण इन्होंने अपने समय की परिस्थिति का अत्यन्त सुन्दर चित्र अंकित किया हैः–

जीविका विहीन लोग, सीद्यमान सोच बस।

कहैं एक एकन सौं, "कहाँ जाय का करी।।" (इत्यादि)

यह पंक्तियाँ तत्कालीन जन–जीवन की विषमता और विवशता का ज्वलन्त चित्र प्रस्तुत करती हैं।

गोस्वामी जी ने अपने समय की प्रचलित अवधी तथा ब्रज दोनों भाषाओं में समान कुशलता से रचना की है।

इनके प्रमुख ग्रंथ हैंः– दोहावली, कवितावली, गीतावली, राम चरित मानस और विनय पत्रिका। उनकी अन्य रचनाएं हैं– रामललानहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली और रामाज्ञा प्रश्नावली।

तुलसीदास उदात्त काव्य के प्रणेता और उनके काव्य की प्राणधारा है– लोक मंगल की भावना।

इसकी रचनाओं में भावों का प्रकाशन इतने कौशल से किया गया है कि उनमें अलंकारों का समावेश स्वाभाविक रूप से ही हो जाता है।

अतः निश्चय ही हम कह सकते हैं:–

[कविता करके तुलसी न लसे,

कविता लसी पा तुलसी की कला।]

'गोसांई चरित' के अनुसार वैराग्य धारण करने के पश्चात तुलसी ने २५ (25) वर्ष तक तीर्थ यात्रा और पर्यटन किया और अन्त में चित्रकूट में अपना निवास स्थान निर्धारित किया। यहीं पर इन्हें प्रेत दर्शन हुए। जिसकी सहायता से इन्होंने हनुमान और राम के दर्शन किये। सम्वत् १६१६ (1616) में यहीं इनका सूरदास से मिलन हुआ। इसके पश्चात इन्होंने राम और कृष्ण सम्बन्धी पदों की रचना की और उन पदों को सम्वत् १६२० (1620) में 'राम–गीतावली और 'गीतावली' के नाम से संग्रहीत किया। तत्पश्चात काशी गमन किया और शिव ने दर्शन देकर इन्हें राम 'कथा लिखने के लिये प्रेरित किया। अतः अयोध्या में आकर १६३१ (1631) में 'रामचरित मानस' की रचना की। फिर इन्होंने 'रामावली', 'रामलला नहछू 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल' आदि ग्रन्थों की रचना की। इसके पश्चात् १६३६ (1639) में 'बाहुक' और "वैराग्य–संदीपनी" की रचना की। सम्वत् १६७० (1670) में जहाँगीर तुलसीदास के दर्शनार्थ काशी आया और उनको धन–सम्पन्न करना चाहा, परन्तु तुलसीदास ने अस्वीकार कर दिया। अन्त में १680 (1680) सम्वत् में गंगा तीर उसी घाट पर तुलसीदास ने श्रावण कृष्ण, शनिवार को महाप्रस्थान किया।

[संवत् सोलह सो असी, असी गंग के तीर। श्रावण श्यामा तीज शनि, शनि, तुलसी तज्यो शरीर।।]

33

सिद्धयोगा शबरी

वाल्मीकीय रामायण, गोस्वामी श्री तुलसीदास जी के रामचरितमानस एवं विविध रामायणों में शबरी का यथा स्थान वर्णन प्राप्त होता है।

'कल्याण' प्रकाशन का सहारा लेकर इस सिद्धयोगा शबरी की जीवनी के विषय में, मैं यहाँ निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा संक्षिप्त परिचय देना उचित समझ रहा हूँ।

महामुनि मतंग पम्पासरोवर के समीप निवास करने वाले तपस्वी–समुदाय के परम गुरू एवं ब्रह्ममवेता थे। उनके अनेक शिष्यों में से एक योग सिद्धा शबरी नाम की योगिनी भी थी। शबरी ने योग के सभी नियमों का पालन करते हुए पूर्ण सिद्धावस्था को प्राप्त कर लिया था। दिव्य शक्ति से सम्पन्न महर्षि मतंग यह जानते थे कि निर्गुण परमात्मा त्रेतायुग में सगुण रूप धारण करके भगवान श्री राम के रूप में मानव–चरित्र करते हुए सीता जी के हरण के उपरान्त उनके आश्रम में आयेंगे। अतः जब मतंगजी स्वर्ग को जाने लगे तो वे शबरी को सतर्क करके छोड़ गये कि भगवान श्री राम के इस आश्रम पर पधारने की अवधि तक तुम यहीं रहो। उनका स्वागत–सत्कार करके तुम उन्हें सीताजी का पता बतला देना। शबरी ने अपने गुरू के आदेश का यथावृत पालन किया।

भगवान श्री राम के आगमन की प्रतीक्षा में योगिनी शबरी योग के सम्पूर्ण नियमों का पालन करते हुए सदैव निरत रहती थी।

एक दिन आ ही गया जब श्रीराम, सीता जी की खोज में अपने छोटे भ्राता लक्ष्मण के साथ शबरी के आश्रम पर पधारे। जगदीश्वर मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम का दर्शन करते ही शबरी भाव–विभोर हो उठी। उसे अपने गुरू की कही बात याद आ गयी–

शबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के वचन समुझि जिये भाए।।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला।।

श्याम गौर सुंदर दोउ भाई। शबरी परी चरन लपटाई।।

शबरी उनके पैरों पर गिरकर लिपट गयी। उसने कन्दमूल फल देकर उन दोनों भाइयों का स्वागत किया। शबरी की सुदीर्घ तपस्या और सुदीर्घ साधना से उत्पन्न उत्कट भक्ति–भाव को देखकर भागवान श्री राम अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उससे बोले– जोगि बृंद दुर्लभ गति जोई। तो कहु आजु सुलभ भड़ सोई।

अर्थात– योगिजनों को भी जो गति अत्यन्त दुर्लभ होती है, हे शबरी! वह आज तुम्हें सरलता से प्राप्त हो गयी है। वैसे भी–

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।

मेरा दर्शन अत्यन्त ही दुर्लभ एवं अमोघ होता है। वह कभी व्यर्थ नही जाता। उसे प्राप्त कर प्राणी अपने सहज स्वरूपावस्था को प्राप्त हो जाता है। उसके सारे क्लेश समाप्त हो जाते हैं। उसे जीवन–मुक्ति का आन्नद प्राप्त हो जाता है, जिसका परम फल शान्ति और ज्ञान के अखण्ड साम्राज्य की प्राप्ति है।

सिद्धा शबरी की योग साधना एक–दो जन्मों की नहीं अपितु अनेकों जन्मों की थी। उसने मुनियों से यावज्जीवन उत्कृष्टतम ज्ञान–चर्चा सुनी थी। वैसे भी भगवान की कृपा

सभी को समान–रूप से प्राप्त होती है उसमें अधिकारी, अनधिकारी का कोई भेद नही रहता। स्वयं शबरी ने कहा है–

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अध

यह शबरी के योगज्ञानजनित विनय का स्वरूप था। अतः योग–साधको को अहंकार का परित्याग कर सभी में मैं भगवान का दर्शन करते हुए विशुद्ध एकात्मभाव भावना करनी चाहिये। इसके अभाव में शान्ति या सुख सर्वथा असम्भव है।

शबरी अपने सुगुणों, अपनी सुदीर्घ साधना और भक्ति भावना से भगवान राम को प्रसन्न करने में बिल्कुल सफल हो गयी थी तथा श्रीराम की ही कृपा दृष्टि से उसे जीवन मुक्ति के आनन्द की गति प्राप्त हुई।
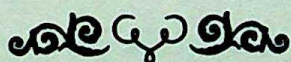
34

ज्ञानयोगी अष्टावक्र

अंग्रेजी में कहावत है– 'Appearance is Deceptive' अर्थात मनुष्य के सुसज्जित शारीरिक बाह्य रूप के सुढोल और भीतरी मानसिक रूप में भिन्नता हो सकती हैं जिस कारण दोनों रूपों के परखने समझने के बिना कोई अन्य अनजान मनुष्य अवश्य धोखा खा सकता है।।

कबीर जी ने कहा है–

जात न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान।

मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।

हमें किसी साधु के धर्म–जात, वर्ण–वर्ग, रंग–रूप आदि की ओर ध्यान नही देना चाहिए अपितु उसके ज्ञान की ओर ध्यान देना चाहिये। ज्ञान के परखने से उससे अच्छी सीख ग्रहण करनी चाहिये।

एक रूपवान पुत्र अपनी अज्ञानता से सत्य–असत्य का मोल न पहँचानकर, अभिमान के वश में आकर अपनी बुद्धि का सन्तुलन खो बैठ सकता है जिसके परिणामरूप एक कुपुत्र बनकर कुलघातक बन सकता है परन्तु इसके विपरीत एक कुरूप पुत्र अपने ज्ञान योग से, अपने विवेक के प्रकाश से धर्मात्मा सुपुत्र हो जाता है और सारे कुल का उद्धार कर सकता है।

मुट्ठी बन्द करके जो दूसरों का उपहास करने हेतु एक अगुंली उनकी ओर उठाता है, उसे याद रखना चाहिये कि

उसकी बन्द–मुट्ठी–हाथ की बाकि अंगुलियाँ उसे स्वयं की ही ओर संकेत करती हैं।

हमारे वेद, हमारे पुराण, हमारे धर्मिक ग्रंथादि हमारे लिये ज्ञानोपदेशों तथा शिक्षाप्रद कथाओं से परिपूर्ण हैं। इन्हीं से एक ज्ञानयोगी ब्राह्मण की कथा है–

अष्टावक्र नाम के एक ज्ञानयोगी ब्राह्मण हुए है इनके संम्बन्ध में कहा गया है कि जब ये गर्भ में ही थे, तभी इन्हें समस्त वेदों का बोध था। एक समय इनके पिता कुछ अशुद्ध पाठ कर रहे थे। इन्होंने गर्म में से ही कहा– 'अशुद्ध पाठ क्यों कर रहे हो? पिता को यह बात कुछ बुरी लगी। उन्होंने श्राप दिया कि 'अभी से तू इतना टेढ़ा है तो जा, तू आठ जगह से टेढ़ा हो।' पिता का वचन सत्य हुआ और ये आठ स्थानों से टेढ़े ही उत्पन्न हुए। इसीलिये इनका नाम अष्टावक्र पड़ा। इन्होंने फिर विधिवत् वेद–वेदान्त एवं योगविद्या का अध्ययन किया।

उन दिनों महाराज जनक के यहाँ एक पुरोहित रहता था। उसने यह नियम बना लिया था कि जो शास्त्रार्थ में मुझसे हार जायेगा, उसे मैं जल में डुबा दूँगा। बड़े–बड़े पंण्डित जाते और हार जाते। हारने पर पंण्डितों को वह जल में डुबो देता। अष्टावक्र के पिता–मामा आदि भी इसी तरह जल में डुबो दिये गये।

जब अष्टावक्र बड़े हुए इन्होंने इच्छा प्रकट की कि मैं भी उस पंण्डित के पास जाकर शास्त्रार्थ करूँगा। ऐसा सुनकर इनकी माता आदि ने इन्हें बहुत मना किया, किन्तु ये माने ही नही। सीधे महाराज के पास राजसभा जा पहुँचे। इनके आठ स्थान से टेढ़े शरीर को देखकर सभी सभासद् हँस पड़े और जब उन्होंने यह सुना कि ये शास्त्रार्थ करने आये हैं तो वे और भी जोरों से हँसे।

अष्टावक्र जी ने कहा– 'हम तो समझते' थे कि विदेहराज (राजा जनक) की सभा में कुछ पण्डित भी होंगे। किन्तु यहाँ तो सब चर्मकार ही निकले। यह सुनकर सभी उनके मुख की ओर देखने लगे। राजा ने पूछा– 'ब्राह्मण! आपने सभी को चर्मकार कैसे बताया, यहाँ तो बड़े–बड़े ब्राह्मण पण्डित बैठे हैं। आप चर्मकार कहने का अभिप्राय बताइये।'

अष्टावक्र ने कहा– 'देखो, आत्मा नित्य है, शुद्ध है, निर्लेप है और निर्विकार है। उसमें कोई विकार नहीं, दोष नही। जिसे उसकी परीक्षा है वही ब्रह्मज्ञानी है, पंण्डित है। उसने पहचानकर जो चर्म से ढके हुए इस अस्थि–मांस के शरीर को ही देखकर हँसता है, उसे उस आत्मा का तो बोध है नहीं, चर्म का बोध है। जिसे चर्म का बोध है वही चर्मकार है।'

इनकी ऐसी युक्तियुक्त बातें सुनकर महाराज को तथा समस्त सभासदों को बड़ा संतोष हुआ। उन्होंने इनका अभिनन्दन किया और आने का कारण पूछा। इन्होंने कहा– 'मैं आपके उस पंण्डित से शास्त्रार्थ करूँगा जो सबको जल में डुबो देता है।' महाराज ने इन्हें बहुत मना किया, किन्तु ये माने ही नही। विवश होकर महाराज ने उस पंण्डित को बुलाया। इन्होंने उससे शास्त्रार्थ किया और शास्त्रार्थ में पंण्डित हार गया। तब तो पंण्डित घबराया। इन्होंने पंण्डित को पकड़ लिया और कहा– 'जैसे तुमने सबको जल में डुबों दिया है उसी तरह मैं भी तुम्हें जल में डुबो दूँगा। यह कहकर उसे जल में घसीट ले गये। उसने संतुष्ट होकर कहा– 'ब्राह्मण! मैं आपकी विद्वत्ता और पाण्डित्य से बहुत प्रसन्न हूँ। रह गयी मुझे डुबाने की बात सो मैं जल में डूब ही नही सकता। मैं वरूण का दूत हूँ। महाराज वरूण एक यज्ञ कर रहे हैं। उन्हें वहाँ पण्डितों की आवश्यकता थी, इसीलिये मैंने यहाँ से सब पण्डितों को वहाँ भेजा है। जिन्हें मैंने डुबाया है वे सबके सब जीवित हैं

और वरूण जी के यहाँ यज्ञ करा रहे हैं। अब यज्ञ समाप्त हो गया। मैं उन सबको आपके सामने यहाँ लाता हूँ। यह कहकर वह वरूणलोक में चला गया और उन समस्त पंण्डितो को दक्षिणा सहित ले आया। सभी ने प्रेम पूर्वक अष्टावक्र जी का आलिंगन किया। और कहा– 'इसीलिये तो ऋषियों ने सुपुत्र की प्रशंसा की है। यदि समस्त कुल में एक भी धर्मात्मा सुपुत्र हो जाता है तो वह समस्त कुल का उद्धार कर सकता है।'
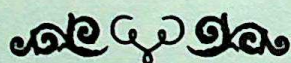
35

मनन करने योग्य

दोष पराये देखि करि, चले हँसत हँसत।

अपने याद न आवई, जिनका आदि न अंत।।

(संत कबीर)

अर्थात– हम दूसरों के दोष, चाहे वे ना के समान भी क्यों न हों, देखकर हँसते हैं और उनका ढ़िढ़ोरा पीटते रहते हैं परन्तु अपने दोष जिनका न ही कहीं आरम्भ होता है और न कहीं अंत, जो अगणित हैं उनकी ओर कभी अपनी दृष्टि दौड़ाते नहीं हैं। वे कभी भी हमें याद नही आते हैं।

इतना ही नहीं बल्कि हम कई बार निर्दोष को भी बिना परखे, बिना सोंचे समझे दोषी ठहराते है और उनके माथे दोषी होने का प्रमाणपत्र चिपका देते हैं। ऐसा पुरातन काल से चलता आया है। अहल्या का ही उदाहरण लीजिये। यहाँ तक स्वयं मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम को भी दोष से दूर नही रखा गया। एक साधारण धोबी द्वारा उन्हें दोष का आरोपन दिया गया। माता सीता को अग्नि– परीक्षा क्यों देनी पड़ी!

हम बिना विचारे, बिना किसी निरीक्षण के, बिना किसी परीक्षण के, असत्य अफवाहों का शिकार बन जाते हैं और दूसरों की सुनी हुई गलत बातों में विश्वास करके सहजता से एक निर्दोषी को दोषी स्वीकार कर अपने आप को पाप के भागीदार बना लेते हैं।

अपने पूर्व प्रधानमंत्री माननीय अटल बिहारी बाजपेयी जी का एक भाषण याद आता है जिसके आरम्भ में उन्होंने कहा था "मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि हे ईश्वर मुझे ऊँचा बना दे। पर इतना भी ऊँचा नही कि अपनों को भी न पहचान सकूँ।" मनुष्य में सत्–असत् की पहचान करने की क्षमता होनी चाहिये।

बिना परखे, बिना किसी अन्वेषण के, बिना विचारे दूसरों को दोषी ठहराकर हम स्वयं ही किस प्रकार दोषी बनकर पाप का शिकार होते हैं तथा अन्त में पश्चाताप में पड़ते हैं। इस संबंध में एक कहानी संक्षिप्त में मनन करने के लिये लिख रहा हूँ–

एक साधु थे। वे अपने को हरेक से अधम समझते थे और हरेक को अपने से उत्तम। घुमते–फिरते एक दिन वे नदी तट पर पहुँचे। स्थान एकान्त, पर बहुत ही रमणीय था। साधु जी प्रसन्नचित्त चारों ओर देखने लगे। उन्होंने दूर से देखा नदी तट पर एक प्रौढ़ आयु का मनुष्य पत्थर पर बैठा है। उसके नज़दीक एक सुन्दर युवती जो अठारह–बीस वर्ष की थी, बैठी है। दोनों के हाथों में काँच के गिलास हैं जिनसे वे कुछ द्रव्य पदार्थ पिये जा रहे हैं और दोनों हर्षोल्लास में है। परस्पर हँसी–मज़ाक में खूब मस्त हैं। इस निर्जन स्थान पर केवल एक मनुष्य और स्त्री को इस हँसी–मज़ाक में देखकर साधु आश्चर्य में पड़ गया! उसने यही सोंचा यह कोई व्यभिचारी हैं। पाप चर्चा कर रहें हैं और गिलास में शराब भरकर प्रसन्नता से मज़ा उड़ा रहे हैं। एक सदाचारी साधु होने के नाते इसने उनके पास जाना (व्यभिचारियों के पास) उचित न समझा।

क्या मैं इनसे भी अधम हूँ ? मैं तो कभी शराब नही पीता हूँ और आज तक न किसी स्त्री से एकान्त में इस तरह

मिला हूँ! साधु इसी विचार में थे कि उन्हें नदी की भीषण तरंगों के थपेड़ों से घायल एक छोटी सी किश्ती डूबती दिखलायी दी। नाव उलट चुकी थी और डूबने वाले मनुष्य इधर–उधर हाथ मार रहे थे। साधु हाय! हाय! करने लगा। इसी बीच पत्थर पर बैठा हुआ प्रौढ़ मनुष्य दौड़ता–दौड़ता आया और बड़े साहस से नदी में कूद पड़ा तथा बड़े साहस के साथ वह नौ डूबने वालों को बचाकर नदी तट लाया। इतने में साधु भी उसके पास पहुँचे। इस तरह अपने प्राणों की परवाह न करके, नदी में कूदकर नौ प्राणियों को बचाना यह देखकर साधु अचम्भे में पड़ गये। वे दुविधा में पड़ गये और चकित होकर इस प्रौढ़ मनुष्य की ओर ताकने लगे। मनुष्य ने मुस्कराकर कहा– 'साधु महात्मा जी! – भगवत् कृपा से मुझ नाचीज़ से नौ प्राणियों की जान बच सकी है, पर भी एक और प्राणी रह गया है, उसे आप बचा लीजिये।' साधु तैरना नही जानते थे, नदी में कूदने की उसमें हिम्मत नही थी। कोई उत्तर नही दे सका। तब उस मनुष्य ने कहा–

'महात्मा जी! आपका जो भाव है वह अच्छा है, पर इस भाव में अभी आपमें यथार्थ भाव की कमी है। नीचा देखकर ऊँचा मानना– इसमें अभिमान पैदा होता है कि आप अपने से नीचों को भी ऊँचा मानते हो। जिस दिन आप दूसरों को वस्तुतः ऊँचा देख पाओगे, उसी दिन आप यथार्थ भाव में ऊँचा मान सकोगे।

यदि ईश्वर मूर्ख के रूप में आपके सामने आये और आप उन्हें पहँचान लें तो, फिर मूर्ख–सा बर्ताव देखकर भी क्या आप उन्हें मूर्ख ही मान लेंगे? जो साधक सबमें भगवान को पहँचानते हैं वे किसी को अपने से नीचा नही मान सकते ।

रही दूसरी बात; अभी आपने अपने मन के दोष दूसरों पर आरोपित किये। सहजता से ही हमें व्यभिचारी समझ बैठे।

देखिये यह जो लड़की बैठी है मेरी बेटी है। इसके हाथ में जो गिलास है, वह इसी नदी के निर्मल जल से भरा है। यह बहुत दिनों के पश्चात आज ही ससुराल से लौट कर आयी है। इसका मन देखकर हम नदी किनारे आ गये थे। बहुत समय बाद मिलने के कारण दोनों के मन में बड़ा आनन्द था, इसीलिये हम लोग हँसते हुए बातें कर रहे थे। फिर बाप–बेटी में संकोच कैसा? वास्तव में मैं भगवान की प्रेरणा से आपके भाव की परीक्षा लेंने के लिये ही यहाँ आया था।

मनुष्य की यह बातें सुनकर संत का बचा–खुचा अभिमान और पाप के सारे संस्कार नष्ट हो गये। मनुष्य में भगवान का रूप देखकर, इसे भगवान का उपदेश जानकर साधु मनुष्य के चरणों पर गिर पड़े। इतने में वह डूबा हुआ एक आदमी भी ईश्वर की कृपा से नदी में से निकलकर वहां आया।

हमें किसी में दोष नही निकालने चाहिये और किसी को भी अपने से नीचा नही मानना चाहिये। यदि किसी ने कोई राह अपना ली है, जो गलत है; तो समाधान ढूढ़कर उसे प्रेम से सच्चा राह दिखा सकते हैं।

36

घर
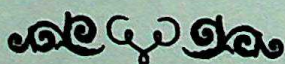
"भाई टाठ्या जी! घर किसको कहते हैं ?" यह जिज्ञासा भरा प्रश्न भाई टाठ्या के भतीजे वीरू की ओर से अपने ताऊ जी (भाई टाठ्या) के प्रति था जब गत वर्ष जून के मास में वे दिल्ली से जम्मू इनके घर आये थे। भाई टाठ्या आश्चर्य में पड़ गये कि उनके सम्मुख बैठते-बैठते उनका थोड़ा हाल-चाल जानते ही कोई अन्य प्रश्न या कुशल-मंगल पूछने के बजाय तुरन्त यही प्रश्न वीरू के मुँह से क्यों निकला। कुछ रहस्य है, इसमें। उसकी इस जिज्ञासा का आंतरिक तात्पर्य क्या हो सकता है! इस हेतु भाई टाठ्या ने अपनी दृष्टि वीरू की ओर गम्भीरता से दौड़ाई। भतीजे के मुख-मण्डल पर छाई उदासी देखकर भाई टाठ्या शीघ्र जान सके कि वीरू को किसी परेशानी ने घेर लिया है। अब उसको इस व्याकुलता का कारण जानने की जिज्ञासा भाई टाठ्या में उत्पन्न हो उठी तथा इसी उद्देश्य से वीरू का ध्यान टालने के लिए उन्होने इधर-उधर का वार्तालाप छेड़ा और बातों-बातों में समझ गये कि इसे गत वर्ष मई मास में कार्यवत कार्यालय के किसी कार्यवश कश्मीर जाना पड़ा था। अपने तीन दिवस के इस कार्यक्रम के बीच वीरू ने जम्मू लौटने से पहले अपने मित्र संग अपने छूटे मकान को देख आने का अवसर प्राप्त कर लिया था।

जम्मू से कश्मीर पाम्पोर–कार्यालय पहुँचते ही यहाँ अवकाश समय प्राप्त प्रातः सायं तथा रात गये तक वीरू अपने छूटे मकान की दिशा की ओर टकटकी लगाकर गम्भीरता से देखा करता था और कभी उसके मुख से यहाँ तक कि स्वपन में भी अकस्मात ऐसे मार्मिक शब्द निकल आते थे– "उस दिशा–थोड़ी ही दूर मेरा मकान है। हाँ! इसी दिशा लाल नगर है। केवल ग्यारह किलोमीटर दूर। ऐ यारो! कोई तो मुझे वहाँ तक साथ ले चलो। मैं एक बार–केवल एक बार उसे अपनी प्यारी नज़र से देखना चाहता हूँ– बस केवल एक बार एक नज़र।"

उसकी ऐसी उत्सुकता, बेचैनी और तड़प देखकर सुनने वालों के दिल पसीज जाते जिस पर एक मुसलमान मित्र ने उसका साथ दिया था। उसे अपने मकान, मोहल्ले के दर्शन कराये थे। परिचित दुकानदारों और पड़ोसियों से मिलाया था। पुरानी यादों के ताज़ा होने पर दोनों ओर स्नेह भरे–प्रेम भरे आँसू बहे थे। मकान में रहने वाले नये चेहरों ने बड़ा आवभगत किया था। दोनों ओर आत्मीयता बढ़ गयी थी।

वीरू पूरी तरह जानता था कि यह मकान कब का उनसे छूटा है पराया बन गया है। पर न जाने उसकी ममता इसे अभी भी अपना ही घर क्यों समझती थी!

क्यों नही? जिस मकान के निर्माण कार्य में वीरू अपने पिता संग हर पग कन्धे से कन्धा मिलाकर चला था। जिस घर में उसके माता–पिता बहन–भाई आदि निवास करते आये थे। जहाँ वीरू का बचपन बीता था। जहाँ से वह स्कूल जाता था। जिस प्राँगण में वह मित्रों संग खेला करता था। जिस उद्यान में वह पुष्प–सब्ज़ी उगाया करता था। जिस घर में वह दुल्हा सजाया गया था जिस घर में उसकी पत्नी दुल्हन बनकर शौक से लाई गयी थी। जिस घर ने वीरू को एक पुत्र

दिया था। जिस घर–परिवार में वीरू ने अपनी आयु के पच्चीस वर्ष कुशलपूर्वक व्यतीत किये थे। भला उसे कैसे भुला सकता था? अभी इसे अपना मकान–अपना घर ठाने बैठा था।

वीरू को पूरा ज्ञान था कि उनका मकान उनसे 1990 ई. के आतंकवाद–उग्रवाद और अलगवाद के कारण छूट गया है पर समय के साथ समझौता न कर सकने के कारण प्रायः उदास चित्त रहा करता था।

अपने छोटे भाई शिबन जी की ओर दृष्टि उठाते हुए संकेतों द्वारा भाई टाठ्या ने वीरू के साथ किये हुए वार्तालाप से मन–ही–मन निकाले गये निष्कर्ष की पुष्टि कर ली तथा उसी क्षण अपना प्रथम कर्तव्य समझकर मन में प्रण कर लिया कि उसका ढ़ांढ़स बँधाकर उसकी खोई प्रसन्ना और खोया हुआ उत्साह उसके मुख पर शीघ्रतर लौटायेगा। चाहे, उसे कितने भी प्रयत्न क्यों न क़रने पड़ेंगे। अतः इस उद्देश्य से कुछ दिन यहीं शिबन जी के घर जम्मू में ही रूकने का निश्चय कर लिया।

भाई टाठ्या ने अपना ध्यान वीरू के पूछे गये प्रश्न "भाई टाठ्या! घर किसको कहते हैं?" की ओर फेर लिया तथा इस प्रश्न में 'घर' शब्द से वीरू का क्या तात्पर्य हो सकता है! इसका अपने मस्तिष्क में पूर्व से ही लगाये गये अनुमान के अनुसार बिना किसी शब्दकोष के पन्ने उलटने–पलटने या किसी गहन परिभाषा की ओर जाकर साफ–साफ शुद्ध शब्दों मे ऐसे कहना आरम्भ कियाः–

"देखो वीरू जी– मेरे विचार में घर वह होता है जहाँ गृहस्थी हो। एक सम्पन्न परिवार वास करता हो। सब सदस्यों के मन स्थिर हों। जहाँ अनुशासन हो। अपने पूर्वजों से प्राप्त किये गये महान संस्कारों अपने कनिष्ठों तक सप्रेम एवं सादर पहुँचाने की क्षमता हो। पारिवारिक विचार–विमर्श में संयम,

सद्भावना तथा सन्तुलन हो। जहाँ बड़ों के प्रति श्रेय, आदर, सत्कार, विनम्रता और छोटों के प्रति प्रेम, स्नेह, मिलनसार भरे ह्रदय हो। किसी एक का चुभा काँटा दूसरे के शरीर को पीड़ा करे। जहाँ बच्चों के हँसते किलकारी भरते बालपन की नटखट क्रीड़ाएँ करते मुखड़े हों। जहां यशोदा की ममता भरी गोद और नंद बाबा का दुलार हो। जहाँ दादी माँ और माँ की लोरी से बच्चे गहरी नींद सो जायें। जहाँ दम्पति में पारस्परिक प्रेम, एकमत, सहनशीलता तथा दृढ़ विश्वास हो। जहाँ सास–ससुर बहु में माता–पिता–बेटी का स्वरूप मिले। जहाँ कभी वाद विवाद न हो। सुख शान्ति का राज हो। वही घर कहलाता है। सबसे विशेष और महत्ववूर्ण बात यह है– जिस घर में ईश्वर वंदना–भगवत आराधना का गान होता हो, ईश्वर प्रसाद का वितरण होता रहे। आरोग्य ऐश्वर्य का आशीर्वाद मिलता रहे– वही घर कहलाता है।

"सुनो वीरू– मन में, मैं जान गया हूँ कि गत वर्ष आप श्रीनगर जाकर वहाँ के मकान को देखकर आये हो और उसी दिन से वहाँ की याद में व्याकुल पड़े रहते हो। मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो और समझो; वह चार दीवारी का मकान था। उसके साथ हमारा सम्बन्ध उतने ही वर्षो का था ज़ितने वर्ष हमने–तुमने उसमें व्यतीत किये। वादी भर में उग्रवाद–आतंकवाद तथा अलगवाद द्वारा हम अल्पसंख्यकों को निष्कासित किया गया जिस कारण हमसे हमारी चल–अचल सम्पति भी छूट गयी। हमारा एक समय का जो अपना था वह अब पराया हो गया। आभारी रहो ईश्वर का, कि परिवार बच गया। याद रखो उग्रवाद–आतंकवाद अपना–पराया नही जानता है। ऐसे लोगों को अपना उद्देश्य आतंक और उपद्रव फैलाकर दूसरे को कमज़ोर या नष्ट करने में ही तृप्ति का अनुभव होता है। क्या तुम्हें ज्ञात नही है कि बहुसंख्यकों को भी कितना आघात पहुँचाया गया। ऐसे लोग सबों के खून के

प्यासे होते हैं। मैं जानता हूँ कि वह मोह–प्रीत, वह लगाव जो जो उस मकान के साथ है, जहाँ परिवार का पालन पोषण हुआ है– जिन कमरों में प्रतिएक सुख–चैन था वह दूसरी बार पुनः मिलना असम्भव है। ऐसा सब हमसे छूट गया है। अब इतना समय व्यतीत हुआ है। उठो अपने आपको ईश्वर चरणों में समर्पित करो। एक करवट बदल डालो। हो सकता है ईश्वर– कृपा से उसी कश्मीर में हमारी जाति के सुसज्जित मकान पुनः निर्माण होंगे। हमारे परिवार पुनः उसी स्वर्ग में पलेंगे। श्री भट्ट के इतिहास के पन्ने पुनः दूसरे पर्याय शब्दों में सुनहरे रूप में लिखें जायेंगे। धीरज रखो। समय बलवान है। ईश्वर कृपा सागर है। उसके घर में देर है, पर अंधेर नही। "जाओ बेटे– समय बहुत आया है। रात होने वाली है। अब थोड़ा विश्राम करें। कल फिर मिलेंगे इसी रूप में; मैं यहां कुछ दिन ठहरने वाला हूँ।" भाई टाठ्या ने कहा।

दूसरे दिन सायं काल अपने दिन के कार्यक्रम और भोजन से निवृत्त होकर वीरू भाई टाठ्या के पास आ बैठा। आज की बातों में कुछ परिवर्तन देखकर ताऊ जी ने सोंचा सम्भ्वतः इसने कल के वार्तालाप पर ध्यान दिया है इसी कारण थोड़ा परिवर्तित दिखाई दे रहा है। "भाई टाठ्या जी! आज सुनाइये ना कुछ" वह बोला।

भाई टाठ्या जी ने अपनी स्वीकृति दिखाई आज का वार्तालाप एक काहानी के रूप मे इस प्रकार आरम्भ कियाः–

"एक व्यापारी था। उसके पास तीन सेवक थे। स्वयं बहुत परिश्रमी और बुद्धिमान था। तीनों सेवकों की बुद्धिमता तथा शारीरिक बल उसने कई परीक्षणों से भलि भांति पहचाना था। स्वयं कर्मठ होने के कारण वह देश के अन्य प्रान्तों में तथा कभी–कभी विदेश भी व्यापार करने जाया करता था। एक दिन उसने विदेश जाने की ठान ली अतः प्रस्थान करते समय

तीनों सेवकों को बुलाया और उनके हाथों में क्रमशः पहले को 20 (बीस) हज़ार दूसरे को पंद्रह हज़ार और तीसरे को दस हज़ार रूपये दे दिये। साथ ही यह भी कह दिया कि एक वर्ष पश्चात उसके वापिस घर लौटने पर वह यह देखेगा कि किसने दी हुई राशि का क्या किया। उसके विदेश प्रस्थान करने के पश्चात यहां सेवक सोंच में पड़ गये कि दी हुई राशि का क्या करें! तीनों ने अपनी सोंच अनुसार अपनी बुद्धि दौड़ाई। पहले ने बीस हज़ार की राशि व्यापार में लगा ली और कुछ समय में ऊपर से बीस हज़ार लाभ के कमाये तथा चालीस हज़ार बना लिए। दूसरे ने भी अपनी राशि व्यापार में लगा दी तथा पंद्रह हज़ार के ऊपर से पंद्रह लाभ कमाकर तीस हज़ार रूपये बना लिए। परन्तु तीसरे सेवक ने सोंचा कि स्वामी बड़ा क्रोधी तथा कठोर स्वभाव के हैं यदि मैं दस हज़ार दी हुई राशि किसी व्यापार में लगा लूँ और यदि उस कार्य में हानि हो गयी तो स्वामी को क्या मुँह दिखाऊँगा। स्वामी तो जीवित नही छोड़ेगा। क्यों न मैं यह राशि किसी सुरक्षित स्थान रखूँ और स्वामी के लौटेने पर उनकी अपनी राशि लौटाऊँ तथा इस पर किसी चिन्ता से भी बच जाऊँ! अतः इस विचार से उसने सारी राशि भूमि में गाढ़ दी और स्वयं स्वामी के लौटने तक इसकी दिन रात रक्षा करता रहा।

एक वर्ष के पश्चात स्वामी लौटे। उन्होंने तीनों से दी हुई राशि का व्योरा माँगा। पहले ने बीस हज़ार के स्थान चालीस हज़ार, दूसरे ने पंद्रह हज़ार के स्थान तीस हज़ार स्वामी के हाथों में सहर्ष और कृतज्ञतापूर्वक रख लिये तथा किस–किस युक्ति के उपयोग से ऊपर का लाभ कमाया; सारा वृतान्त स्वामी को प्रसन्नचित कह सुनाया। स्वामी अति प्रसन्न हुए। मूल की दी हुई राशि तथा ऊपर का कमाया हुआ लाभ वापिस उनके हाथों सहर्ष तथा उन्हें आगामी सराहना हेतु लौटा दिये। अब स्वामी तीसरे सेवक से सौपी हुई राशि का

हिसाब माँगने लगे। सेवक ने शीघ्र भूमि में गाढ़ी दस हज़ार की राशि निकालकर स्वामी के हाथों में लौटा दी और साथ ही थरथर्राते होठों साफ–साफ कह दिया कि उसने सोंचा कि आप बड़े कठोर स्वभाव के है। यदि वह भी किसी कार्य में इतनी बड़ी राशि लगा देता और उस कार्य में हानि होती तो क्या मुँह दिखाता। आपका कठोर स्वाभाव उसे कहाँ जीवित छोड़ देता? अतः सारी राशि भूमि में गाढ दी और स्वयं दिन–रात अमानत की सुरक्षा में लगा रहा। स्वामी ऐसा सुनते ही कि इस बुद्धिहीन ने पहले ही हानि होने का सोंच लिया था; बहुत क्रोधित हो गये। उसने लातें मार मारकर इस नौकर की कमर तोड़ डाली और घर से बाहर निकाल दिया।

कहानी समाप्त करके भाई टाठ्या बोले– "तो यह थी आज की कहानी अब बहु जी के हाथों शीरचाय (नमकीन चाय) हो जाये और रात्रि का विश्राम करें। आज्ञापालन के लिये किसी को कोई कष्ट नही उठाना पड़ा क्योंकि बहु जी ने पहले ही नमकीन चाय का प्रबन्ध कर रखा था। केवल पीने की देर थी। थोड़े ही समय में चाय भी सामने आयी। बहु के हाथों बनी शीरचाय का स्वाद कुछ और ही था। खूब वाह वाही हो गई। तत्पश्चात शुभरात्रि की आज्ञा और आशीर्वाद पाकर सब अपने अपने शयनयान की ओर चले गये।

इस घर में रात्रि का भोज प्रायः साढ़े दस बजे तक समाप्त हुआ करता था फिर सास–बहु चौका सफाई में लगा करती थी परन्तु आज क्या अचम्भा देखा सबका भोज नौ बजे तक कराया गया था और भाई टाठ्या जी जब अपने अनुज शिबन जी के साथ गपशप में लीन थे तो देखते हैं वीरू जी अपने पुत्र रिकू को लेकर आज की रात्रि की कहानी सुनने आ बैठे हैं।

"कहो रिकू मुन्ने। आज बड़े दादू के पास बैठने में इतनी उत्सुकता किस कारण दिखा रहे हो ? कहो क्या बात है– मुन्ने। भाई टाठ्या ने रिकू की ओर देखकर बोला।

"बड़े दादू। सुना; कि आप अच्छी कहानी सुनाते हो। मुझे भी सुनाइये ना! मैं भी सुनना चाहता हूँ। रिकू ने चंचलता में बोला। और आगे भी कुछ यति देकर बोल उठा देखो ना बड़े–दादू; यहां पर दादू मुझे कहानी नही सुनाते हैं। केवल टॉफी, चिप्स आदि लाते रहते है। पापा भी नही सुनाते हैं। मम्मा केवल 'दूध पियो–खाना खाओ' बोलती रहती है। हाँ; दादी तो सुन्दर दादी है मेरी प्यारी दादी है केवल दादी ही मीठी–मीठी कहानियाँ सुनाती है और मैं मीठी नींद सोता हूँ। अब आप भी सुनाइये ना! मैं आपको अब कहीं नही जाने दूँगा– आप मेरे अच्छे–सुंदर बड़े दादू हैं। सुनाइये ना अब कहानी।"

"अच्छा जी! कहानी सुनने पापा के साथ आये हो ? तो लो सुनो। आज मैं आपको एक मुर्गी की कहानी सुनाता हूँ। लो सुनो।" भाई टाठ्या जी ने कहानी आरंभ की।

"एक उद्यान में एक मुर्गी रहा करती थी। उसके आठ चूजे थे। मुर्गी–माँ इन आठों की देखभाल और रक्षा तन–मन से अपने आपको हर प्रकार के धाव पर लगाकर करती है। दिन–रात इनकी रक्षा हेतु इनके साथ लगी रहती थी। इन आठ चूज़ों में से एक चूज़ा कुरूप और एक अपंग था उसकी एक टाँग टूटी थी। बाकी छः कुशाग्र और निडर थे। माँ की छत्र–छाया में परिवार भलि भांति उद्यान में पलता था। परिवार में संतोष था। पर जब समय बीतता गया। बच्चे बड़े होने लगे। कुशाग्र बच्चों में जाग्रता आने लगी– पंखों के बढ़ने के साथ साथ बुद्धि ने भी चतुरता प्राप्त करनी आरम्भ की। सोंच–समझ में प्रवृति आने लगी। इसी के फलस्वरूप एक दिन

छः कुशाग्र चूज़ों में से एक ने स्वनिष्ठ बनकर मुर्गी से कहा– माँ! माँ! क्या इस उद्यान की दीवार के परे (पार) भी कुछ है?"

माँ मुर्गी ने उत्तर दिया– 'पता नही बच्चे इस चार दीवारी के पार भी क्या कुछ हो सकता है? इतना तो मैंने कभी नही सोंचा। हाँ! इतना तो याद आ रहा है– एक दिन कुछ लोग शायद यह आपस में कह रहे थे कि इसके परे भी एक और उद्यान है और उसके भी परे एक और उद्यान है। शायद वे उसे 'संसार' का नाम दे रहे थे। वे शायद यह भी कह रहे थे कि वह 'संसार बहुत बड़ा है। वहाँ हर प्रकार की चहल–पहल होती है। पर बच्चों! मैंने कभी इस ओर ध्यान नही दिया। इसी वातावरण में रहकर संतुष्टि पाई है। मैं क्यों यत्न करती?

छः कुशाग्र चूज़ों ने मन ही मन माँ की बात अपने में समा ली कि इस चार दीवारी परे भी कुछ और है जिसे 'संसार' कहते हैं। धीरे–धीरे उनमें उस 'संसार' को देखने की उत्तेजना जाग उठी। सोंचा; क्यों सीमित रहें। उद्यान में? क्यों न अपनी बुद्धि का सदुपयोग करें! नया वातावरण देखें। नयेपन खोज करें। नयी पहचान प्राप्त करें। नयेपन में धुल मिल जायें। इसी ताक में रहकर उनके दिन व्यतीत होने लगे और एक दिन ऐसा आया; छः के छः चूज़े चारदीवारी लाँगकर भाग निकल पड़े जिसकी किसी को भनक भी नही लगी।

ममता भरी माँ, जिसने कभी इस दिन के आने का सोंचा भी नही था। जिसने अपने ही पुत्रों से धोखा मिलने का कभी अनुमान नही लगाया था। जिसने बच्चों का विरह अभी नही सहा था, शोकाकुल दीवार से चिपककर विरह–वियोग के आँसू बहाने लगी।

अब बगीचे में रह गयी थी शोकातुर मुर्गी माँ और उसके केवल दो बच्चे। वे भी एक कुरूप और दूसरा अपंग

एक टाँग से लँगड़ा। लँगड़े ने सोचा– मैं तो पहले ही एक टाँग से हाथ धो बैठा हूँ, व्यर्थ में इधर–उधर फुदक–कुद में क्यों दूसरी टाँग भी तोड़ बैठूँ। यहीं रहना ठीक है तथा बुद्धिमता है। दूसरी ओर कुरूप चूज़े में तो फुदकने की तथा कुछ उड़ान लगाकर दीवार पार करने की शक्ति थी; पर उसने सोंचा– मैं तो कुरूप हूँ। अपने पंख फैलाने का बल है मुझमें; पर क्या करूँ कुरूप हूँ। कुरूप हूँ! क्यों इधर उधर जाकर अपनी कुरूपता की प्रदर्शनी करके दूसरों की हँसी का पात्र व्यर्थ में बन जाऊँ! हँसी–मज़ाक का पात्र बनने से यहीं सीमित रहने में मेरी भलाई है। माँ तो पालन करती आई है; आगे भी करेगीं अतः इन दोनों भईयों ने माँ के पास ही रहने सहने में अपनी भलाई समझी। अतः यह दोनों माँ के पास ही चिपके रहे।

देखना यह हैः– जहाँ उन छः कुशाग्र बच्चों ने एक नया संसार खोजने तथा अपने आपको उस वातावरण में समाने में अपना स्वार्थ दिखाकर अपनी ममता भरी माँ की कोई चिन्ता किये बिना उसे छोड़ दिया उसी प्रकार इन दो बच्चों के भी अपने स्वार्थ ने इन्हें माँ के साथ रहने का परामर्श दिया। इस संदर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ उचित ठहरती हैः–

"माँ बेटे का इस जग में है बड़ा ही निर्मल नाता। पूत कपूत सुने हैं पर ना माता सुनी कुमाता।।— कुपत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।" अर्थ यह है कि पुत्र कुपुत्र बन सकते हैं पर एक माता कभी भी कुमाता नही बन सकती है।

छः बच्चों के विरह के वियोग में माँ मुर्गी व्याकुल रहने लगी। न भोजन खोजने दाना ढूँढने– पानी पीने आदि की चिंता, न स्वयं की कोई चिन्ता। केवल विरह के वियोग ने एक माता को अपने घेरे में लपेटा था। परिणाम यह निकला

कि वह विरह–योगिनी माँ कुछ ही दिनों में आकुलता के कारण इतनी कमज़ोर पड़ गई कि यमराज को उसका द्वार खटखटाना पड़ गया और मुर्गी बेचारी स्वर्ग सिधार गयी।

अपंग और कुरूप दोनों चूज़े अनाथ बन गये। बगीचे में कोई अनाथालय नही था। क्या करते बेचारे! एक था शरीर से अपंग और दूसरा था तो बलवान; पर था बुद्धि से अपंग, कमज़ोर। दोनों शक्तिहीन और असहाय अनुभव करने लगे। दूसरों की दृष्टि उन पर न पड़े तथा किसी शत्रु का शिकार ना बैठें, वे दोनों आहट हीन उद्यान की दीवार से चिपक बैठे। पर काल का करिश्मा भी देखिये। बिल्ली और चील बनकर दूसरे दिन ही उनपर झपटा मारकर एकदम अपने मुँह का ग्रास बना लिया।

"तो यह थी आज की कहानी बच्चो– बाकी कल। चाय पिलाओ 'बहु–बेटी'। थोड़ा विश्राम भी करूँ।" भाई टाठ्या बोले। बहु जी चाय लेकर आई। दोनों भाईयों की चाय होने के पश्चात परिवार सदस्यों ने भी रात्रि के विश्राम हेतु अपने अपने शयनयान की ओर प्रस्थान किया।

अगला दिन दो भाईयों के बीच गृहस्थी सम्बन्धी अन्य वार्तालाप में कैसे बीता इसका पता नही चला। दोनों लीन और मस्त रहे। क्योंकि दूसरी प्रातः भाई टाठ्या को दिल्ली वापिस जाना था। ऐसा जानते हुए कि बड़े दादू और रूकने वाले नही हैं रिकू अपने पिता वीरू संग बड़ी उत्सुकता के साथ पीछले दिनों से आधा घंटा पहले ही भाई टाठ्या जी की कहानी सुनने उनके सम्मुख बैठे थे। यह देखकर बड़े दादू ने सहर्ष आज की कहानी इस प्रकार आरम्भ कीः–

आज की कहानी है एक घटित घटना से सम्बन्धित। आपको पता ही है कि हमारे बड़े–बड़े नेताओं ने उदाहरण के तौर पर हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जिन्हें हम श्रद्धा और

आदर से बापू के नाम से पुकारते हैं, पं. जवाहर लाल नेहरू जो स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री रहे हैं, सरदार वल्लभ भाई पटेल, देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति जो रहे हैं, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, डॉ. भीमराव अंबेडकर, नेताजी सुभाष चंद्रबोस, सरदार भगत सिंह आदि कितनी कितनी कठिनतम यातनाएँ सहनकर देश को अंग्रेज़ों के हथकंडों दो सौ वर्ष की पराधीनता से स्वतन्त्र कराया। अपना सर्वस्व अपनी मातृभूमि भारत पर निछावर करके अपने स्वयं को देश हेतु बलिदान करने की कसौटी पर सदा तत्पर रहते थे। हम भारतीय सदा ऐसे वीर सेनानियों के लिए उनके प्रति नत मस्तक रहकर आदर श्रद्धा तथा गर्व से उनके शीश पर सुमन बरसाते रहेगे।

अब जो घटना मैं सुनाने जा रहा हूँ वह यदि छोटी दिखे पर है अति शिक्षाप्रद। हमारे नेताओं ने स्वयं उदाहरण बनकर हमें सदा निर्भयता और निडरता का पाठ पढ़ाया है। आज की ऐसी घटना का शीर्षक है–

'न भय न घृणा।'

1950 ई. में जब पं. जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री की हैसियत से लंदन गए तो वहाँ एक समारोह में ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चर्चिल से भेट हुई। श्री चर्चिल भारत के स्वतन्त्रता–संग्राम के और गाँधी जी तथा पं. नेहरू के कटु आलोचक थे। दोनों में जब खुली बातें हो रही थी तो श्री चर्चिल ने पिछली बातों का याद करते हुए पं. नेहरू से कहा, "आपने अंग्रेज़ों के जेलों में कितने वर्ष बिताए?" नेहरू जी ने उत्तर दिया, "लगभग दस वर्ष।" चर्चिल ने कहा, "आपके साथ ऐसा व्यवहार करने के लिए आपको वास्तव में हमसे घृणा करनी चहिए।" नेहरू जी ने उत्तर दिया, "बात ऐसी नही है। हमने ऐसे नेता के अधीन काम किया है जिसने हमें

दो बातें सिखाई। एक तो यह किसी से डरो मत और दूसरी किसी से घृणा मत करो। हम आपसे डरते भी नही थे इसलिए अब घृणा भी नही करते हैं।

तो लो जी बच्चों; यह थी नेहरू जी की कहानी। पिछली रातों से मैं आपको तीन, प्रमुख कहानियाँ सुनाता आया हूँ। एक व्यापारी की, दूसरी एक मुर्गी की तथा तीसरी 'न रखो भय, न किसी के प्रति घृणा।'

इन कहानियों को आप तक पहुँचाने का मेरा केवल एक ही उद्देश्य था कि हमारे बच्चे बच्चियों को तथा आगामी पीढ़ी को कुशाग्र, निपुण, कर्मठ तथा ईमानदार बनना चाहिए। स्वार्थ छोड़कर अपनी शक्ति अपनी क्षमता पहचानों। भविष्य का सोचों। याद रखो; जो हुआ अच्छा ही हुआ और जो भविष्य में होगा अच्छा ही होगा। ईश्वर पर विश्वास रखना है। उसने स्वयं कहा है– व्यर्थ में क्यों अपने आपको कष्ट में डालते हो? क्यों चिंता में डूबे रहते हो? और विश्वास रखो जो होता है वह मैं ही करता हूँ और आपके भले के लिए ही करता हूँ। तुम निष्काम सुकर्म करते जाओ। फल मैं स्वयं देने वाला हूँ। परिवर्तन भलाई के लिए ही होता है।

अच्छा बच्चो! अब विश्राम करते हैं। प्रातः सवेरे बहु–बेटी की मीठी चाय पीकर दिल्ली का मार्ग लेना है। मेरा आशीर्वाद सब पर है। ईश्वर सकुशल और दीर्घायु रखे। आगामी मिलन तक स्नेह भरी विदाई।

37

ज्ञानोपदेष

1. जो शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाहित होता है, वही आत्मा को आत्मा में देखता है और वही सबका आत्मरूप होता है।

(उपनिषद्)

2. कामना भोग से कभी शान्त नही होती, घी डालने पर अग्नि के समान वह अधिकाधिक बढ़ती ही रहती है।

(मनुस्मृति)

3. संसार में संग ही प्रधान है, जैसा संग होता है, वैसी ही बुद्धि बन जाती हैं कुसंग से बड़े–बड़े देवता और ऋषियों का पतन हो गया हैं और सत्संग से अनेक पतित भी पूज्यनीय हो गये हैं, अतएव सदा सत्संग करते रहो।

(एक महात्मा)

4. तुम परमेश्वर और भोग दोनों की सेवा नही कर सकते। विषय न बटोरो। कल के लिये चिन्ता न करो। कल अपनी चिन्ता आप करेगा।

(ईसामसीह)

5. सदा स्मरण करने योग्य तो एक ही वस्तु है। सदा सर्वदा सर्वत्र श्री कृष्ण के सुन्दर नामों के स्मरण मात्र से ही प्राणिमात्र का कल्याण हो सकता है।

(श्री चैतन्य महाप्रभु)

6. जब शान्त और सतोगुणी होकर चित्त आत्मा में लग जाता है, तब धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति आप ही हो जाती है और जब वही शरीर तथा घर आदि मिथ्या पदार्थों में लगकर प्रबल रजोगुणी और विषयों का अनुरागी बन जाता है तब अधर्म, अज्ञान, विषय–लोलुप्ता और अनैश्वर्यता छा जाती है।

7. वैराग की प्राप्ति से ही मनुष्य विरक्त होता है, विरक्त होने पर ज्ञान होता है, तभी उसका जन्म–क्षय होता है, तभी उसे ब्रह्मचर्य फल मिलता है, तब उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता है, फिर उसे यहाँ आकर जन्म नही लेना पड़ता।

(भगवान बुद्धदेव)

8. जिनके राग, भय और क्रोध का नाश हो गया है और जो वेद के तत्व को समझ गये हैं ऐसे ही मननशील मुनिगण कल्पना से और समस्त प्रपंचों से रहित अद्वय आत्मा का दर्शन पाते हैं।

(उपनिषद)

9. भगवान श्री विष्णु को प्रसन्न करना वास्तव में बहुत कठिन कार्य नही है, क्योंकि वह सब भूतप्राणियों का आत्मा और सर्वव्यापी है।

(प्रहलाद)

10. मन के अहंकार को छोड़कर ऐसी जबान बोलनी चाहिये, जिससे दूसरों को भी शान्ति पहुँचे और अपने को भी शान्ति मिले।

(संत कबीर जी)

11. सूर्य की किरणें सब जगह समान पड़ने पर भी जैसे जल और दर्पण में प्रकाश अधिक दिखायी देता है, वैसे ही

भगवान का विकास सबके हृदयों में समान रूप से होने पर भी साधु के हृदय में उसका विशेष प्रकाश होता है।

(श्री राम कृष्ण परमहंस)

12. मनुष्य जितना ही मन की वासनाओं का पालन करता है, उतना ही अधिक रोगी, दुखी और असंतोषी बनता है।

(राल्फ वाल्डो ट्राइन)

13. काम, क्रोध, मद और लोभ जब तक मन में बसे हैं, तब तक पंण्डित और मूर्ख दोनों ही एक समान हैं।

(गो. तुलसीदास जी)

14. सत्कर्म करने वालों की देवता भी सहायता करते हैं और असत्–मार्ग पर चलने वाले का साथ सगा भाई भी छोड़ देता है।

(श्री कृष्ण मिश्र यति)

15. इस संसार में दो ही अमूल्य रत्न हैं– एक भगवान और दूसरा संत। इन दोनों का कोई मोल–तोल नहीं हो सकता।

(दादू जी)

16. सद्विचारों के परायण होना ईश्वर की कृपा का चिह्न है। भगवत्कृपा बिना किसी का परम कल्याण नही हो सकता।

(दत्तात्रेय)

17. जो मनुष्य विपत्ति में भी अपने ऊपर भगवान की कृपा का अनुभव करता है, वह कभी दुखमयी मृत्यु के अधीन नहीं होता।

18. दुख मनुष्यत्वक विकास का साधन है। सच्चे मनुष्य का जीवन दुख में ही खिल उठता है। सोने का रंग तपाने पर ही चमकता है।
19. तुमने जो कुछ शुभ किया है, उसे भगवान ने देखा ही है; फिर अपने मुँह से उसकी बड़ाई क्यों बघारते हो।
20. यदि बार–बार आत्मनिरीक्षण न कर सको तो कम–से–कम दिन में दो बार सुबह और शाम अपना अन्दर अवश्य टटोल लिया करो। तुम्हें पता लगेगा कि दिन भर में तुम ईश्वर के और जीवों के प्रति कितने अधिक अपराध करते हो।
21. लोग धनियों के बाहरी ऐश्वर्य को देखकर समझते हैं कि ये बड़े सुखी हैं, हम भी ऐसे ही ऐश्वर्यवान् हों तथा सुखी हों, पर वे भूलते हैं, जिन्होंने धनियों का हृदय टटोला है, उन्हें पता है कि धनी दरिद्रों की अपेक्षा कम दुखी नही हैं। दुख के कारण और रूप अवश्य ही भिन्न–भिन्न हैं।
22. सरल बनो, कपट की बात छोड़ दो; जीवन मे। सीधापन लाओ। संतोष धारण करो। याद रखो– भगवान को सरलता और संतोष बहुत प्रिय हैं

38

पंण्डित और मूर्ख

1. जो सब तरह से योग्य, बुद्धिमान और समर्थ होते हुए भी विनीत है, वह पंण्डित है, किन्तु जो अयोग्य, अविवेकी और असमर्थ होते हुए भी अभिमानी है, वह मूर्ख है।
2. जो धन और यश की लिप्सा त्याग दे, वह पण्डित है, किन्तु जो चंचला लक्ष्मी को अचला बनाने का दुराग्रह करे, वह मूर्ख है।
3. जो वृक्ष लगाते हैं, वे पण्डित हैं। किन्तु जो स्वार्थ के लिए वृक्ष को काटता है वे मूर्ख हैं।
4. दुख में साहस और सुख में संयम से काम लेने वाला व्यक्ति पंण्डित है किन्तु दुख में कर्तव्यच्युत और सुख में मदान्ध बन जाने वाला मूर्ख है।
5. जो विचार कर बोलता है, जिसकी जीभ हृदय में है, वह पण्डित है, किन्तु जो अविचारी है, जिसका हृदय जीभ में है, वह मूर्ख है।
6. जो दूसरों की भूल देखकर अपनी भूल सुधारता है, जो दूसरों के अनुभव से अपने ज्ञान की वृद्धि करता है, वह पण्डित है। जो ठोकर खाकर कुछ नही सीखता, भूल को दोहराता है, दूसरों के अनुभवों को निस्सार समझता है, वह मूर्ख है।
7. जो कर्म करने में विश्वास रखता है, जो कर्मनिष्ठ है और बड़े–से–बड़े कार्यभार अथवा बाधा को भी नगण्य समझकर कर्म–साधना में लीन रहता है, वह पंण्डित है। किन्तु जो

आलसी है, प्रमादी है और केवल स्वार्थवश हाथ में लिये हुए काम को भी बीच में छोड़ देता है, वह मूर्ख है।

8. जो अपनी सच्ची प्रंशसा सुनकर भी अपनी आत्मा को प्रवंचित नहीं करता, आगे ही बढ़ता रहता है, वह पंण्डित है। जो अपनी मिथ्या प्रशंसा को सुनकर और दूसरों की चाटुकारिता को समझकर भी अपने आपको धोखा देता रहता है, वह मूर्ख है।
9. जो निरन्तर परहित में निरत, दूसरों की विपत्ति को अपनी विपत्ति और दूसरों की सुख–समृद्धि को अपनी सुख–समृद्धि मानकर चलता है, वह पण्डित है, किन्तु जो सदैव अपनी कौड़ी चित करने के लिए दूसरों का गला तक काटने को तत्पर रहता है, जो अपनी विपत्ति को जगविपत्ति बनाकर भी अपनी सुख–समृद्धि को केवल अपनी ही धरोहर समझता है, वह प्रपंचक मूर्ख है।
10. जो भय रहित, व्यवहार कुशल, लोकप्रिय और न्यायप्रिय है, वह पंण्डित है, किन्तु जो कायर, हठी, घमंडी और अविवेकी है, वह मूर्ख हैं।
11. जिसके लिये संसार कोई पराया नही, वह पण्डित है, किन्तु संसार में जिसका अपना कोई कहने को नही है, वह मूर्ख है।
12. जिसके ह्दय में द्विधा नही है, जो मन में है, वही वाणी में है वही कर्म में है, वही व्यवहार में है वही सिद्धान्त में है, वह पंण्डित है। किन्तु जिसके जीवन में स्थिरता नही, विचारों में सबलता नही, वाणी में सरलता नही। मन में दृढता नही, कर्म में निष्काम शुचिता नही– वह मूर्ख है।
13. जो अपने जीवन के लक्ष्य–बिन्दु के प्राप्त न होने तक निरन्तर आगे ही बढ़ता जाता है, वह पण्डिंत है, किन्तु जो पथ बाधाओं से घबराकर निरन्तर विश्राम की कामना

करता है, 'गति' की नही 'यति' की कामना करता है, वह मूर्ख है।

14. जो दूसरों के गुण और अपने दोष देखता है, वह पण्डित है, किन्तु जो दूसरों के दोष और अपने गुण देखता है, वह मूर्ख है।
15. जो स्वयं ठोकर खाकर ही नहीं दूसरों को लगी ठोकर से भी सीख लेता है, लाभ उठाता है, वह पण्डित है, किन्तु जो बार–बार ठोकर खाकर भी रोड़े का ज्ञान नही रखता, न अपनी भूल ही सुधारता है, वह मूर्ख है।
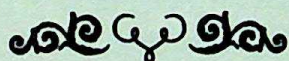
39

कश्मीर में जल प्रलय

वादी कश्मीर के इतिहास को साक्षी मानकर कह सकते हैं कि यहां का पतझड़ ऋतु भी (सितंबर–नवंबर) एक आशा भरा ऋतु रहा करता था यहां के फल–फूल भरे उद्यान, अनाज भरे खलिहान इस ऋतु में अपने यौवन की गरिमा को दर्शाते थे। यहां के प्राकृतिक स्त्रोत, उपहार अपने यौवन को निखारते थे। यहां तक कि यह ऋतु दो अनजान जीव वर–वधु को जीवन भर की एक सुखद श्रृंखला में बांधने वाला ऋतु हुआ करता था। भिन्न सुहाग–सुहागिन के रूप को निखारने हेतु भिन्न–भिन्न वस्तुओं, आभूषणों से सुसज्जित दुकानें बिजली के प्रकाश से जगमगाकर ग्राहकों को अति दूर से अपनी ओर आकर्षित किया करती थी।

यहां अगस्त मास 2014 ई. तक ऐसा ही सारा शहर था। हर मकान सुसज्जित खड़ा था। अपने सकुशल परिवार को अपने में बसाए था। अपने कुटुम्ब को अपनी कोख में समाए हुए था। बगीचों की लताएं अपने प्रसाद रूपी फल को अतिथि के सम्मुख प्रस्तुत करने तैयार थीं। यहां के वनों की ओर प्रातः समीर में पक्षियों की पंक्तियां दिन में पेट भरने और विश्राम हेतु उड़ान भरती थीं और सायं सकुशल पुनः अपने बसेरे नीड़–शाखाओं की ओर लौटती थीं। यहां का हर पर्वत सीना ताने पर्यटकों के आवभगत में खड़ा था। यहां के ढाई दशकों के उग्रवाद का अंत होने को आया था। पुनः शांति का दृश्य सामने मिलता था। यहां उन भीषण मॉर्टर–गोलों, बम

विस्फोटों का विस्फोटकों समेत अंत हुआ था। पर किसे पता था एक और प्रलय आने वाला है यहां!

सितंबर मास 2014 ई. ने प्रवेश किया। पहली तिथि के आने से कुछ पूर्व ही इंद्रदेवता कुछ क्रुद्ध थे। पूरे क्रोधित होकर पांच तिथि तक दिन रात अपना क्रोध दर्शाते रहे। क्रोधित रहे पूरा सप्ताह। नदी नालों का पानी चढ़ने लगा। मेरे मोहल्ले के कई घरों में दूध–गंगा के जल प्रवाह ने प्रवेश किया। कमरों के भीतर आने लगा। लोग घबराते हुए इधर–उधर की शरण की आस में घरबार छोड़कर निकल पड़े। कुछ लोग नीचे रखा सामान ऊपर की मंजिल में लाने लगे। मैं भी ऐसा ही करता गया। पानी मेरे आँगन में आया–बरामदे पर रहा। इसकी पोड़ियों को पार करने लगा। पर धन्य है रात दो बजे तक इन्हीं पोड़ियों तक ही सीमित रहा। कुछ तीन चार इंच और चढ़ता तो मेरी तबाही होनी थी। हम दम्पत्ति बहुत घबराए। पर देखते हैं कुछ पड़ोसी हमारे ही यहां रात के बसेरे के लिए आ रहे हैं। उनके घरों में जल ने प्रवेश किया था। क्योंकि दूध गंगा में पूरे जोर से चढ़ने की तथा कुछ समय अंतराल के पश्चात उतरने की क्षमता है तो ईश्वर की कृपा से हमारे इर्द गिर्द दूसरी शाम को पानी उतरने लगा। पर कुछ दूर के घर पानी में चारों ओर फंसे थे।

चिंतित मन मैं अपने परिचितों की सूचना पाने इधर–उधर फोन करता रहा। सूचना फैली थी कि रामबाग, महजूर नगर, आजाद बस्ती और छानापोरा के कुछ क्षेत्र पानी में डूबने लगे हैं। मेरा फोन जवाहर नगर मिला। श्री खशू और श्री वांचू के फोन मिले। हमें उनके यहां, जवाहर नगर आने के लिए कहते गए। यहां बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए दूसरे स्थानों से नवयुवक चल पड़े। दिन रात सहायता करते रहे। किश्तियों द्वारा यहां लोगों को घरों से निकाला गया तथा अन्य सहायता का प्रबंध किया गया।

सात सितंबर पता कि चला जवाहर नगर, राजबाग, गोगजी बाग, करण नगर, लाल चौक आदि यानि श्रीनगर का सारा क्षेत्र जलमग्न हो रहा है। घरों में पानी एक प्रवाह के साथ घुस रहा है। लोगों को जान बचाने का कोई उपाय सूझता नहीं है। जाएं तो कहां जाएं! जो जहां से भाग सका, भाग गया। बच्चे, बूढ़े, अस्वस्थ बेचारे ऊपर की मंजिलों में छत तले छिपते गए। ऊपर छत–आकाश तथा नीचे अपने ही घर में पानी ही पानी। न खाना, न पीना। पकाएं तो क्या! कहां, किसमें और किस पर! यहां पीड़ित लोगों ने अपने घर गिरते, डूबते देखे। पड़ोसियों के मकान गिरते देखे। पानीग्रस्त होते देखे। ऐसा भयानक दृश्य था कि **'हम तो डूबे सनम–आ–तुमको भी ले डूब चलें।'** कश्मीर ने फिर सतीसर का रूप धारण किया था।

फोन, मोबाईल, यातायात बस बंद हुए। एक सहारा रहा, वह भी केवल बरजुला का। वह था यहां का एक एमटीएनएल यानी इस ट्रांसमिशन का लैंडलाइन। इस उपलब्धि के सहारे रेडियो कश्मीर से स्वयं मैंने यह घोषणा सुनी 'अपने शुभचिंतकों तक बड़े खेद के साथ हम यह सूचना पहुँचाना चाहते हैं कि रेडियो कश्मीर के परिसर में पानी पूरा भर गया है। मशीनों में पानी घुसकर काम करना असंभव हो गया है। ट्रांसमिशन ने मानो काम करना छोड़ दिया है। कर्मचारी इधर–उधर जान बचाने भाग रहे हैं। आईन्दा कब मुलाकात होगी उस समय तक खुदा हाफिज़' और ट्रांसमिशन बंद हुआ।

श्रीनगर दूरदर्शन शंकराचार्य पहाड़ी से अपना कार्य जारी रखे रहा। उसी के दर्शाते भयावह दृश्य से ज्ञात हुआ कि फौज के जवान मसीहा बने अपनी जान हथेली में रखकर लोगों की जान बचाने में व्यस्त थे। हैलिकॉप्टर द्वारा फौज पैक्ड फूड़, दवाईयां तथा अन्य आवश्यक सामग्री लोगों तक

थोड़ी ऊपर उड़ान करके करीब पांच दिन, दिन–रात एकदम बिना किसी रूकावट के पहुँचाते रहे। इसी के साथ–साथ नवयुवक भी किश्तियों आदि द्वारा सहायक बनते रहे। फौज द्वारा छतों तले फंसे लोगों को बिना किराया के दिल्ली जम्मू आदि विमान द्वारा सुरक्षित पहुंचाया गया। कई एनजीओ, निजी सहायक पार्टियां, कई तनजीमें, मोहल्ला समितियां, मस्जिद प्रबंधक समितियां, गुरूद्वारों की प्रबंधक समितियां दिल खोल कर बहादुरी से संकट की घड़ी में यथाशक्ति अपना योगदान देने उपस्थित हुईं। इनके योगदान की जितनी प्रशंसा की जाए कम है। कई मस्जिदें, गुरूद्वारे आवश्यक सामग्री से भर गए तथा लोगों में सामग्री बांटी गई। और श्रीनगर के कई गुरूद्वारों के साथ–साथ बरजुला गुरूद्वारा अपनी ओर से प्रत्येक प्रकार की सहायता के योगदान में व्यस्त रहा। हजारों शरणार्थियों को शरण मिली। बिस्तरें, दवाईयां, खाना, पीना, पीने का पानी, बाथरूम आदि की सुविधा चौबीस घंटे थी– प्रशंसनीय हैं सब सहायककार प्रबंधक।

प्रश्न इतना ही नहीं था पीड़ितों को सुविधा पहुंचाने का। प्रश्न था बीमारों को अस्पताल पहुंचाने का। मृतकों को दफनाने का, उनके दाह–संस्कार का। जब कोई सरकार ही न हो, कोई मंत्री ही न हो। जहां मंत्री लोग मीडिया द्वारा अपने आपको बचाने की दुहाई देते हैं वहां बेचारे पीड़ित रोगी क्या करें। ऐसे मंत्रियों को मोटी मोटी रकमों से अपना कोष भरने के बजाय उन कर्मठ डाक्टरों, कर्मचारियों से पाठ सीखना चाहिए जो दिन रात अपने कार्य में व्यस्त रहे। सेवा करते करते कईयों ने अपनी जानें गंवा दी–चाहे वे फौज के सिपाही थे, चाहे जनसाधारण थे। सब थे अपनी–अपनी माताओं के लाल। युवक 'बागाती' जी ने अपने घर को पुनः देखने की ममता में अपनी जान पानी से निकलकर तीसरे दिन उसी पानी में गंवा दी। क्या दशा हुई होगी, हम ही जानते हैं। नेक

कर्मी है वे लोग जिन्होंने इस बालक का दाह संस्कार भलि भांति 'रंगरेट कालोनी' में किया तथा मेरे लिए पूजनीय हैं वे लोग जिन्होंने मास्क, सुरक्षा यंत्र आदि के बिना उपयोग के रात ग्यारह बजे तक उन चौदह अनजान बाहरी प्रांतों के मृतकों के दाह संस्कार करने में अपना योगदान दिया। इन्हें बरजुला–गुरूद्वारा से ट्रकों द्वारा 'रंगरेट कालोनी' से दूर 'गोगो कालोनी' रात के सात बजे पहुंचाया गया। कई ट्रकों में लकड़ी आदि का भी प्रबंध किया गया था। यहां पहाड़ी दामन (वुडुर) पर सीआरपी की आज्ञा प्राप्त कर उनके प्रकाशित फलश बल्बों के सहारे दाह संस्कार किया गया। कर्मठ सरदार युवक, वृद्ध खड़े रहे सुकर्मी है ये मनुष्य। इस सबका साक्षी कुछ हिंदुओं के साथ मैं भी हर पल रहा। इन चौदह मनुष्यों (नर–नारियों) की मृत्यु एक मकान के गिरने से जवाहर नगर में हुई थी।

किसे अनुमान था! कश्मीर के 'पेरिस, छोटा लंदन' उपाधि पाने वाले कस्बे, शहरों के आकाश छूते हुए बड़े–बड़े व्यावसायिक मॉल, ईमारते सुसज्जित नई नई फैशनों वाली, करोड़ों की व्यावसायिक फैक्ट्रियां आदि एकदम जल प्रभावित होंगी। किसे ज्ञात था बड़े–बड़े बगीचों के फल कुछ दिन पश्चात दस– दस रूपए दर किलो बिक जाएंगे। कुछ बुद्धिजीवि कहते हैं यह निष्कासित लोगों की आह लगी थी। कई कहते हैं–यहां के लोगों में गर्व आ गया था। कुछ चलती आ रही घूसखोर–निकम्मी सरकार के निकास साधन बंद कराने को दोष देते हैं। कई कुछ और कारण बताते हैं। कहते हैं यदि सरकार होती तो क्या केवल मुख्यमंत्री ही दो–दो हाथों सहायता सामग्री का वितरण करते, हेलिकॉप्टर पर दिखाई देते। पर मैं कहता हूँ। कारण कुछ भी हो भविष्य में ऐसा दृश्य किसी के जीवन में न आए। प्रार्थी हूँ माता दुर्गा का, भगवान शंकर का। राम रहीम क्षमा करें अब। शताब्दी के ऐसे जल

प्रलय में कोई भी प्रभावित होने से नहीं बचा यहां तक कई बेचारे बेमौत चल बसे।

40

व्यक्तित्व (personality)

व्यक्तित्व वह आन्तरिक शक्ति है जिसके पूर्णरूप से विकास होने पर ही मनुष्य अपनी न्याय बुद्धि को बाहरी व्यवहार में लाकर सफलता की सीढ़ी चढ़ सकता है। व्यक्तित्व से ही मनुष्य सबल और स्वावलम्बी बनता है तथा दूसरों के लिए प्रभावशाली बनकर उनके मस्तिष्क पर सदा छाया रहता है। यह मनुष्य के शक्ति सम्पन्न बनने की कुंजी है। व्यक्तित्व के बिना जीवन असफल सिद्ध हो सकता है।

हमें अपने तथा अपने बच्चों के व्यक्तित्व पर पूरा ध्यान देना चाहिये। वह माता–पिता अपने बच्चों के व्यक्तित्व से अन्याय करते हैं जो उन्हें प्रायः डाँटते रहते हैं या सदा 'ऐसा करो–वैसा मत करो'' कहते रहते हैं। इससे बच्चे के व्यक्तित्व की हानि होती हैं माता–पिता का ऐसा व्यवहार बच्चों की आत्माओं के उस भाग को नष्ट कर सकता है जिसे व्यक्तित्व कहा जा सकता है। जिस प्रकार एक मूर्ख माली किसी पौधे को हर समय काट काटकर उसे बढ़ने नही देता है, उसी प्रकार यदि दूसरे व्यक्तियों द्वारा बच्चों का हर समय विरोध हो और उन्हें अपनी आन्तरिक न्यायबुद्धि को व्यवहार में लाने और विकसित करने का अवसर न दिया जाए, तो उनके लिए दुर्बल और परावलम्बी (dependent) होने के सिवाय और कुछ बनना असम्भव है।

हमें बच्चों के आन्तरिक अधिकारों की सराहना करनी हैं कलियों को खिलने से पहले ही तोड़ मरोड़कर मिट्टी में

मिलाना नही है। उनका व्यक्तित्व त्रुटिपूर्ण और दुर्बल कभी नही बनने देना चाहिए। बच्चों को निडर, निर्भय और स्वावलम्बी बनाना हैं जिन बच्चों को 'हौवा', 'भूतप्रेत' या 'बाबा जी' आदि शब्दों का डर हर घडी दिखाया जाता है या जिनके सिर पर धमकी और मार–पीट का भूत हर समय सवार रहता है, वे क्या शूर–वीर बनेंगे? नये–नये कामों में हाथ डालने का वे क्या साहस करेंगे? हमें बच्चों के प्रति स्नेह–भाव, प्रेम–भाव रखना चाहिये। हमें उनका मित्र बनकर उनका विश्वासी बनना चाहिये। ऐसा व्यवहार करना है कि वे हमसे दिल खुलकर प्रसन्न–चित सम्बन्धित हों। लक्ष्मीबाई ने अपने बचपन में उभारे गये व्यक्तित्व के बल पर ही 'झाँसी की रानी' बनकर अंग्रेजों से लोहा लिया और अपने चमत्कार दिखाये। शिवाजी अपनी माता जीजा बाई तथा एक बुद्धिमान गुरू ब्राह्मण दादाजी कोनदेव द्वारा व्यक्तित्व के प्रोत्साहन पर ही छत्रपति शिवाजी मराठा बन गये और मुगलों से लोहा लेते रहे।

यह सुल्तान अलतमश के व्यक्तित्व का ज्ञान–बल ही था जिसने अपनी पुत्री रज़िया को एक लड़की होने पर भी उसके व्यक्तित्व का शक्तिबल जगाया और उसे हिन्दोस्तान की मलिका रजिया सुल्ताना बनाया।

पं. जवाहर लाल नेहरू नैनी जेल इलाहाबाद आदि से अपनी पुत्री इन्दिरा का अल्पायु से ही पत्रों द्वारा उसका व्यक्तित्व उत्साहित करते रहे। परिणाम स्वरूप इन्दिरा गाँधी भारत में ही नही अपितु विश्व में एक सफल प्रधानमंत्री जानी गई।

विश्व को लें:–

श्रीलंका की सिरमाऊ बन्डारा नाइकी अपने व्यक्तित्व से ही विश्व में पहली महिला प्रधानमंत्री बन गई।

दक्षिण अफ्रीका के डॉ. नेलसन मन्डेला को लीजिये– 1962 से 1990 यानि 27 वर्ष गोरे शासको द्वारा जेल में रखने के पश्चात भी अपने देशवासियों का मार्ग दर्शन करते रहे और आखिरकार देश के राष्ट्रपति बन ही गये।

अमेरीका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन (1809–1865), एक निर्धन लकड़हारे के पुत्र होने पर भी देश के उच्चतम पद पर पहुँचे। पूरे देश में गुलामी का बन्धन समाप्त कर ही दम लिया। व्यक्तित्व का उदाहरण है।

हम अपने देश के बापू–सुभाष–नेहरू के व्यक्तित्व के बलिदान को नही भूल सकते।

मदर टैरिसा के व्यक्तित्व का सेवा–भाव वंदनीय नही है, तो क्या है?

संक्षिप्त में; हमारे पूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का व्यक्तित्व क्या हमारे लिये उदाहरण नही हैं?

हमें उपरोक्त महान पुरूषों के उन्नत चारित्रिक बल से प्रेरणा लेनी चाहिये। यह हमारे पथ प्रदर्शक हैं।

कुछ लोगों का व्यक्तित्व प्रशंसनीय ही नही; अपितु विश्व वन्दनीय बनता है। इसमें स्त्री–पुरूष, जाति–वंश, रंग आदि का भेद–भाव नही रहता।

एक सफल व्यक्तित्व के लिए–

(क) सच्चा विश्वास (ख) दृढ़ संकल्प

(ग) आत्म परीक्षा (घ) आत्म ज्ञान

(ड.) आत्म विश्वास (च) आत्म सम्मान और

(छ) आत्म नियन्त्रण का होना आवश्यक है।

व्यक्तित्व के विषय में कहा गया है:–

''त्रुटिपूर्ण व्यक्तित्व हर एक स्थान पर हानिकारक होता है।''

— नीत्शे।

''मनुष्य को अपना महत्व समझ लेने दो, फिर वह सब वस्तुओं को अपने पैरों के नीचे कर देगा, अपने वश में कर लेगा।''

— इमर्सन।

''जो कुछ तुम्हें करना है, उसे अपनी पूरी ताकत से करो।''

— बाइबल।

''आत्मविश्वास रखो, क्योंकि इसी लोहे के तार से प्रत्येक हृदय स्पन्दित होता है।''

—इमर्सन।

''मैं अपना जीवन कहीं भी क्यों न बिताऊँ, परन्तु सदा आत्मसंतुष्ट घटनाओं का सामना करने के वास्ते तैयार रहूँगा।''

— वाल्ट विटमैन।

41

एक अध्यापक की डायरी

एक लम्बे समय तक अध्यापक के पद पर नियुक्त निजी अनुभूतियों की डायरी के कई भाग लिखे जा सकते हैं। पर यहां संक्षिप्त में संस्मरण के तौर पर कुछ–कुछ का ही वर्णन करता हूँ।

जी हाँ! यह एक अध्यापक की डायरी है अर्थात 'मेरी डायरी' है; जो युवावस्था के बीस पार करते ही सेवा निवृति के साठ पार करने तक कश्मीर के एक ऐतिहासिक मिशन स्कूल यानी टैंडल बिस्कू स्कूल में कार्यरत रहा। यद्यपि स्कूल प्रशासन ने सेवानिवृति में स्वीकृति की इच्छा नही दिखाई पर कुछ समय पुनः सेवा करने के पश्चात अनुनय विनय करके स्वीकृति प्राप्त की। जिज्ञासा थी कि आर्थिक कमज़ोर शिष्य–वर्ग में अपना योगदान देकर जीवन के शेष दिन गुजारूँ। क्योंकि सदा याद आती है अपने आदर्शीय प्रधानाचार्य रैणावारी निवासी स्वर्गीय पं. श्रीधर–जू–डूल्लू की, जिन्होंने अपने जीवन का अधिकतम योगदान लद्दाख के निम्न वर्ग में (Lower middle class) में मसीहा बनकर उनके उत्थान में व्यतीत किया था। यह लद्दाखी लोगों के लिए बुद्ध भगवान के एक रूप में पूजनीय रहे हैं। जहाँ मैं अनुगृहीत हुआ हूँ इनकी दीक्षा नवीं–दसवीं कक्षा (1958–1959 ई.) में डी. ए. वी. स्कूल रैणावारी, श्रीनगर जम्मू कश्मीर में पाकर, वहीं मैं इसी स्कूल के अपने पिता सहित अन्य योग्य अध्यापकों का भी आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझमें भी निम्न वर्गों में समय बिताकर अपना यथा संभव योगदान देने की चेतना बालपन से ही

जगाई थी। मुझे विश्वास है इन जैसे महान पुरूषों के आशीर्वाद फलस्वरूप मैं अपनी जिज्ञासा में सफल होकर अपना संकल्प गत आठ वर्षों से निभाने का यत्न कर सका हूँ।

यद्यपि अध्यापिकता से जीविका प्राप्त करना पारिवारिक देन थी। पर बिस्कू विद्यालय में प्रवेश पाकर अध्यापन के तौर तरीके देखना तथा अपनाना एक नये ढंग का अनुभव था। उस समय यहां के बीस–तीस वर्षों से अधिक अनुभवी, निपुण, कर्मठ, तथा कौशल्य अध्यापकों के संपर्क में रहकर इनके साथ कन्धे–से–कन्धा मिलाकर चलना यदि तलवार की धार पर चलना था, पर मेरा सौभाग्य ही था। नित नया सीखने को मिलता था। अपने कार्यक्रम में निखार आता था।

अपनी कर्मठता का प्रमाण कक्षा में ही नहीं, कश्मीर घाटी की उच्च पर्वतमालाओं– महादेव, अल्लापत्थर गंगाबल, कोलोहाई, टटाकोटी, हयनपास, गुलमर्ग, पहलगाम सोनामर्ग के पहाड़ो पर पर्वतारोहन करके ही नहीं, इनकी गोद में पली फैली झीलों अर्थात तारसर–मारसर, किश्नसर–विश्नसर, अल्लापत्थर गंगाबल–कौंसरनाग आदि के पावन चरण छूकर ही नहीं; अपितु सिन्ध–दूध गंगा लिद्दर आदि नदी नालों के सतत कलरव करते तटों पर रातें बिताकर, देना होता था।

'IN ALL THINGS BE MEN' विद्यालय का यह उद्देश्य रहा है। हर कार्य में लौह पुरूष बनो, इसे जीवन का लक्ष्य मानकर मन–मस्तिष्क में अंकित कर दैनिक सद्व्यवहार में लाना था।

सुशिक्षित होकर कक्षा के पाठ्यक्रम की सीमा तक ही सीमित रहने वाला अध्यापक यहां की पसंद नही था। यहां के अध्यापक को मैदान के हर खेल में भाग लेने के अतिरिक्त

अपने जौहर बच्चों में मिल जुलकर प्रेम से उनका हृदय जीतने से दिखाने होते थे।

क्योंकि सब अध्यापक वर्ग तथा बच्चे चार हाऊसों (भागों) में बटे हुए होते थे– 1. कोलोहाई 2. हरमुख 3. ट्टाकोटि तथा 4. महोदेव इसलिये प्रतियोगिताओं में अपने हॉऊस को प्रथम घोषित कराने की होड़ में लगे रहते थे।

यदि सभी पाठान्तर कार्य (Extra Curricular activity) अपने–अपने महत्व के थे, पर डल झील में नेहरू पार्क से निशात और ऐसी ही वापसी की तैरी बिना किसी से अंगुली तक छूने की प्रतियोगिता स्कूल का महत्वपूर्ण वार्षिक कार्यक्रम होता था। ''डलक्रास'' का दिन। तीन–चार सौ बच्चों का जिनमें मैलिन्सन विद्यालय की कुछ अध्यापिकाएं या लडकियाँ भी भाग लेती थीं, डलझील की गहराई में पाँच–छः घंटे, ग्यारह किलोमीटर तैरते रहना। जहां कोई दस घंटे भी लेता था। एक चुनौती का दिवस होता था। पूरे दिन अध्यापक और कुछ बच्चे नाव में सतर्क तैराक की ओर नज़र लगाये रखे रहते थे। तैराक का उत्साह बढ़ाने के लिए नाव निकट लाकर उसके खाने के लिए कुलचे दिये जाते थे।

निस्सहाय लोगों की सेवा बच्चों की बनाई एक समिति (poor Fund committee) द्वारा की जाती थी। बच्चे घर के दिये दैनिक व्यय से इच्छानुसार कुछ बचाकर कोषाध्यक्ष के पास एकत्र करके मासिक तौर निस्सहायों की सेवा करते।

पैरों में हन्टर जूते पहनकर, कमर पर तीन दिन के खान–पान का सामान और कुछ कपड़े रखकर–हेवरसैक। (बड़ा बेग) का पिटठू रखकर, कन्धों पर मिलट्री बरसाती रखे, गले में पानी की बोतल लटकाये, महादेव 13013 फुट का वार्षिक पवर्तारोहन करना– दारा, हारवन, बोबजन, लिद्दवास के

बीच पड़ावों के गुजर कोठों को वृक्ष की टहनियाँ काटकर साफ करना–स्वयं बर्फीले पानी से खाना बनाकर तीन रातें गुज़ारना– आत्म विश्वास–आत्मनिर्भरता का पाठ आगामी जीवन के लिए पढ़ाता था।

ऐसे कर्म शुचि, शुद्धि और सत्य शीलता (Honesty) का पाठ पढ़ाते थे। निम्नस्तर के स्कूलों में भी पढ़ाने का अवसर मिलने पर मैंने अनुभव किया कि सब बच्चे एक जैसे होते हैं। यह भी सत्य है कि निम्नवर्ग के बच्चों में मनोवैज्ञानिक तौर प्रायः अधिक नम्रता होती है। वे समझते हैं कि उनका सहायक–सहारा केवल कक्षा का अध्यापक ही है इसलिए कक्षा में ही सब सीखने में रूचि दिखाते हैं।

वार्षिक पांच सितंबर अध्यापक दिवस पर उच्चवर्ग के विद्यार्थियों ने जहां मुझे बाइबल आदि पुस्तकों समेत अन्य वस्तुएँ भेंट की हैं वहीं निम्नस्तर के शिष्यों ने भी अपनी श्रद्धा फूलदान तथा चित्रों आदि द्वारा दिखाई है। सबकी भेंट श्रद्धा के सुमन जानकर स्मरणता के रूप में सुरक्षित रखे है– मैंने। इनमें 1984 ई. का एक कैलेंडर भी है।

कहा जाता है कि बच्चों के भविष्य में अस्सी प्रतिशत परिश्रम तथा बीस प्रतिशत भाग्य काम करता है (80%:20%)। सत्य ही है। कुछ मनुष्य इस मत के हैं कि वर्तमान में वसीले और पैसे बाज़ी मारते हैं। यह भी सत्य हो सकता है पर मैं कह सकता हूँ कि हर समय, हर स्थान ऐसा संभव नही है। जो दूसरों के सहारे जीते हैं वे अधिक देर टिक नही पाते हैं। याद रखें:– ***"हमें खुद बनना है नाखुदा (stareer) अपनी किश्ती का–सहारों का क्या भरोसा–सहारे टूट जाते हैं।"*** हमें पिच्छलग्गू नही बनना हैं। अपने जीवन को स्वयं प्रकाशमय बनाना है।

कर्तव्यः– एक अध्यापक का कर्तव्य है कि सब बच्चों में अपना ज्ञान व प्यार एक समान बाँट दे। बच्चों में अनुशासन का ज्ञान दें तथा उनसे थोड़ी दूरी भी रखे। बच्चे कच्ची माटी समान है जिस सांचे में डालो वैसे ही बनेंगे। यह वे सुमन हैं जिन–जिन गमलों में डालो, सजेंगे–शोभा पायेंगे। अध्यापक के हाथों में बहुत है।

अध्यापक की बोई खेती लहलहाती रहे यही कामना करता हूँ।

जब किसी व्यक्ति को अपना विद्यार्थी–जीवन याद आता है तो अवश्य उसके नेत्रों के सामने उसके शिक्षकों का चित्र भी आता है। बीते दिनों की याद में कबीर के यह शब्द भी गुनगुनाता हैः–

"तू कहता है कागद की लेखी

मैं कहता हूँ अखियन की देखी।"
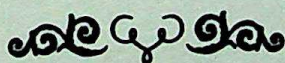
42

कुबेर देवता के नाम एक खुला पत्रः-

स्थानः–	नार्थ ब्लॉक
डाकखानाः–	कथाकथित स्वर्गीय पर आधुनिक नरकीय कश्मीर– (इण्डिया)
उत्तरीय हिन्दमहासागरः–	साऊथ एशिया
पिनः–	गुमशुदा– एपिलाइड फॉर (Applied for)

सेवा में,

मान्नीय कुबेर जी,

सादर प्रणाम,

अपने प्रदेश से विस्थापित होकर, भारत देश के महानगरों में भटककर, कई वरिष्ठ नागरिकों के सम्पर्क में आकर, सर्वसम्मति से प्रतिनिधित्व करने की अनुमति पाकर, आप श्रीमान से अनुरोध करना चाहता हूँ कि कृपया धन देवता, धनपति, कोषाध्यक्ष होने के नाते हमारे पासबुकों को अपने समक्ष मंगवाकर पूरे निरीक्षण के पश्चात एक साक्षी बनकर गौरव के साथ हमसे सहमत हो जाइये कि हमने किस प्रकार

छोटे–बड़े कस्बों–शहरों में रहकर अपने–अपने मतानुसार लक्ष्मी जी की पूरी आराधना करते दिन–रात कठिन परिश्रम से आपके कोष में धन जुटाने का आयुभर प्रयत्न किया है। आपके बैक कर्मचारियों द्वारा हमारे पास बुकों में क्रमानुसार सब विवरण दिया गया है।

हम जानते थे कि सतयुग में जब ऋषियों मुनियों के सैंकडों–सहस्त्रों वर्षों की कठिन तपस्या करने पर भी हमारे ईश्वर गण टस–से–मस होने का विचार ही नही फरमाते थे तो अवश्य हमें इस कलियुग में 'किस खेत की मूली' का आदर होगा। हमें भक्तिहीन, भावहीन, मानकर किसी काम का नही समझकर नकारा जायेगा।

इसी कारण अपनी टाँगों पर स्वयं खड़ा रहने की सोंच में दिन–रात के कठिन परिश्रम से छोट–छोटे नगरों में रहकर धन जुटाने का प्रयत्न किया था। इस आशा से कि बुढ़ापे का सहारा अर्थात अन्तिम घड़ी का सहारा यही रहे। किसी का बोझ न बनें। परिवार भी पले और हमारी आन–मान भी रहे।

परन्तु आपसे अवश्य यह शिकायत है कि आपने क्यों हमें महानगरों में धकेलकर हमसे हमारी पूंजी खाली करवा डाली। क्यों ऐसा होना सहन किया। क्यों ऐसा अनुभव होता है कि बिना कोई आवताव देखे आप निर्दयता से हमारे पासबुक खाली करने पर तुले हुए हो। यदि हम आयु भर एक शाहमार की भान्ति अपनी पूंजी की रक्षा करते आ रहे थे परन्तु ना जाने एकदम यह कैसे खाली होती जा रही है और ना जाने किन पापों के कारण हम कंगाल होना अनुभव कर रहे हैं।

हम माता लक्ष्मी जी से भी यह प्रश्न पूछना चाहते हैं!

हम जानते हैं कि महानगरों में रहना पहाड़ से टकराना है। पर निन्यान्वे (99) के फेर में जीवन काल के

अमूल्य वर्ष व्यतीत करने का यह परिणाम निकले! ऐसी आशा न थी।

अपने बच्चों के मकान, वाहनों, इंश्योरेन्स व्यापार, पानी, बिजली, स्कूल फीस की मील लम्बी बिलों को देखकर, ई. एम. आई. आदि जिनका नाम हमने सुना ही नही था, लम्बी–लम्बी सूचियों को देखकर हम हतोत्साह होकर कभी मूर्छित भी पड़ जाते हैं। चिन्ताकुल सहम जाते हैं।

बच्चों को क्या दोष दें! भीषण गर्मी में, कड़ाके की सर्दी में; स्कूटर–मोटर साईकिल आदि वाहनों में सैंकडों मील प्रतिदिन अपना टारगेट (जिसे हम जानते नही थे) पूरा करने की रेस–दौड़ में लगे उन्हें देखकर हम पर क्या बीतती है– ऐसा हम ही जानते हैं।

आपसे सविनय अनुरोध है कि कृपया बाजारों की आकाश छूती बढ़ती–चढ़ती कीमतों को देखकर, हमारे बच्चों के आय–व्यय को देखकर, इन पर कृपालु बनकर इनकी आय में छः मासिक न हो सके तो अवश्य प्रतिवर्ष सौ प्रतिशत की बढ़ोतरी करते रहें। इसके लिये आपको लक्ष्मी जी के पास भी जाना होगा। आभारी रहेंगे। इसी के साथ–साथ सब विस्थापित वरिष्ठ नागरिकों को पुनः अपने अपने शहर–गाँव भेजकर चिनार तले बाकी बचे जीवन के दिनों में सांस लेने का अवसर प्रदान करने की सिफारिश करें। सबकी आयु में समंगल बढ़ोत्तरी करने की सिफारिश करें।

इसके लिये आपको श्री कृष्ण के दरबार में एक निवेदन पत्र लेकर जाना पड़ेगा– निवेदन में स्वीकृति पाकर धर्मराज की भी स्वीकृति पाकर यमराज को लिखित रूप में सूचित करना पड़ेगा ताकि यमराज के यमदूत कार्यक्रम के अनुसार ही कार्य में लगे रहें। बे खटके–बिना सूचना–बिना

समय किसी को कृपया तंग न करें। सबको विश्राम करने का अधिकार है।

हम जानते हैं कार्य कुछ कष्ट–साध्य है पर 'जहां चाह वहां राह' पृथ्वीलोक पर आप द्वारा ही आया है। कार्य में सफलता पाकर आपकी ही प्रतिष्ठता बढ़ेगी– चारों ओर आपकी जय–जयकार होगी। मनुष्य लोक क्या–देवता लोक भी आपकी प्रशंसा करेंगे।

आपका आज्ञापालक–दासों का दास

रोशन लाल काचरू

(प्रतिनिधि)

कविताएँ

43

मैं दफ्तरी बाबू हूँ।

1. जी हाँ; मैं दफ्तरी बाबू हूँ।
   मुझ पर ईश्वर का वरदान है। मुझसे तुलना न करो।
   मैं दफ्तरी बाबू हूँ।।
2. मैं सर्दी में सिकुड़कर काँगड़ी सेंकने वाला हूँ
   गर्मी की लू या कर्फ्यू में घर के अन्दर सीमित रहने वाला हूँ।
   मैं हड़ताल की काल की ताक में रहकर पालन करने कराने में कटिबद्ध रहने वाला हूँ। मैं दफ्तरी बाबू हूँ।
   मुझ पर ईश्वर का वरदान है मुझसे तुलना न करो।
   मैं दफ्तरी बाबू हूँ।।
3. तुम प्रातः सात बजे प्रतिदिन तीस मील दूर दफ्तर जाने वाले हो।
   मैं सप्ताह में तीन दिन, तीन मील दूर दफ्तर जाने वाला हूँ।
   दफ्तर जाकर तुम्हें टारगेट पूरा करना है, शाम को दस बजे घर वापस आना है।
   मैंने तो टारगेट का नाम ही नही सुना है
   यदि अफसर सख्त न हो, तो तीन घण्टे अधिक ना बैठने वाला हूँ।
   दफ्तर में खूब बहाने बनाना जानने वाला हूँ
   मैं दफ्तरी बाबू हूँ। मुझ पर ईश्वर का वरदान है।
   मुझसे तुलना न करो। मैं दफ्तरी बाबू हूँ।।

4. तुम पत्थरों को घिस्सा–घिस्सा कर पैसा कमाने वाले हो
मुझे सहज ही पानी से पैसे मिल जाते हैं।

मैं दफ्तरी बाबू हूँ।

मुझ पर ईश्वर का वरदान है।

मुझसे तुलना न करो।

मै दफ्तरी बाबू हूँ।।

मैं दफ्तरी बाबू हूँ।

मुझ पर ईश्वर का वरदान है।

मुझसे तुलना न करो।

मैं दफतरी बाबू हूँ।।

5. क्यों विश्वास नही होता;
मुझ पर ईश्वर का वरदान है?
तो बोलो मेरी तरह केवल तीन महीने काम करके वर्ष भर अपना घर चला सकते हो?
बीवी बच्चों का पेट पाल सकते हो?
तुम वर्ष भर प्रातः सायं एक करके भी फुटपाथ पर सोने वाले हो।

मैं केवल दो मास तेरी ही बस्ती में फेरी लगाकर, दुकान सजाकर, वर्ष भर ठाठ से पलंग पर सोने वाला हूँ।

मैं दफ्तरी बाबू हूँ। मुझ पर ईश्वर का वरदान है।

मुझसे तुलना न करो। मैं दफ्तरी बाबू हूँ।।

6. यह अतिशयोक्ति नही है।
क्यो! विश्वास नही होता मुझ पर ईश्वर का वरदान है?

तो बोलो; क्या तुम बिजली फीस प्रतिमास पाँच सौ रूपये अधिक भरने वाले नही हो?

तीस रूपये से कम किलो चावल न खरीद सकने वाले ग्राहक नहीं हो ?

तो सुनो; मैं इच्छा से अस्सी रूपया मासिक बिजली फीस अदा करने वाला ग्राहक हों।

तीन सौ साठ रूपया वर्ष भर नल का फीस देने वाला हों।

तुम्हारा तीस रूपये का चावल नौ रूपये किलो दर लेने वाला हूँ।

सुनो; क्या तुमने राशन कार्ड का नाम सुना है?

क्या तुमने कभी मिट्टी का तेल लाने की शक्ति पाई है?

मेरे पास यह सब होता है। फलता–फूलता राशन कार्ड होता है। मेरे जैसे सब के लिए मय्यसर होता है।

मैं दफ्तरी बाबू हूँ। मुझ पर ईश्वर का वरदान है।

मुझसे तुलना न करो। मैं दफ्तरी बाबू हूँ।।

7. कहता हूँ; मुझसे तुलना न करो।
मैं दफ्तरी बाबू हूँ।
मुझ पर ईश्वर का वरदान है।

सर्दी में सिकुड़कर काँगड़ी सेंकने वाला हूँ।

गर्मी की लू या कर्फ्यू में घर के अन्दर सीमित रहने वाला हूँ।

पर दोनों मौसम, दोनों टाईम, मुर्गा मीट खाने वाला हूँ।

मैं दफ्तरी बाबू हूँ। मुझसे तुलना न करो।

मुझ पर ईश्वर का वरदान है।

जी हाँ मैं दफ्तरी बाबू हूँ।

मैं दफ्तरी बाबू हूँ।।

44

मैं भोर का तारा हूँ।

मैं भोर का तारा हूँ।

जीवन के छः दशक पार कर चुका हूँ। कभी भी मिट सकता हूँ मैं भोर का तारा हूँ।।

दृष्टि जब बीती जवानी पर डालता हूँ; तो निश्चिन्त होता हूँ, अपना कर्तव्य यथा शक्ति निभाया है।

गर्व नही करता हूँ; पर चिन्तामुक्त हूँ, किसी पर अन्याय नही किया है। केवल कश्मकश ही किया है।

मैं भोर का तारा हूँ।।

मनुष्य गलती का पुतला है, यदि मुझसे कभी भी किसी के प्रति कुछ भी गलती हुई हो, तो क्षमा याचना करता हूँ।

मैं भोर का तारा हूँ।।

जीवन दाता ने दिया है, जहाँ तक हो सका किसी का दिल न दुखाने का प्रयत्न किया है।

पर यदि कोई मुझसे दुखी हुआ हो, तो क्षमा याचना करता हूँ। कभी भी सूर्य की किरण पड़ते ही, ओझल हो सकता हूँ, मिट सकता हूँ।

मैं भोर का तारा हूँ।।

जीवन में यदि न दे सका किसी को कुछ, पर किसी का कुछ लिया भी नही है।

कई शाह सवारों को गिरते देखा है, संसार को उनके कर्मों पर बोलते सुना है।

यदि स्वर्ग नसीब न हो; तो नर्क में भी न धकेले, केवल अपनी ही शरण में रखे; यही विनती करता हूँ।

मैं भोर का तारा हूँ। कभी भी मिट सकता हूँ।

मैं भोर का तारा हूँ।।
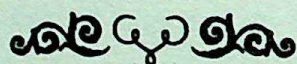
45

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।

दिल्ली की कड़ी सर्दी तथा भीषण गर्मी के प्रकोप का सहन करते हुए यहाँ की महानता तथा इतिहास का दृष्टिकोण करते हुए, यहाँ की गरिमा का बरवान करता हूँ।

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।

सबको अपने दिल में समाती हूँ। सबका सहृदय अभिनन्दन करती हूँ। सबके दिल में विराजमान रहती हूँ।

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।

मेरे यहाँ यदिः–

नवम्बर में पधारो– तो एक सप्ताह के भीतर फल्यू–फीवर द्वारा अभिनन्दन करके आपको बिस्तर पर लेटने का परामर्श देने वाली हों।

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।

दिसम्बर मे पधारो–तो दिन में धूप के दर्शन करा के रात की सर्दी से कम्पित कराने वाली हूँ।

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।

जनवरी में पधारो–तो सर्दी की लहर दिखाकर आपको घर की चार दीवारी में सीमित रख सकने वाली हों। अपनी धुँध दिखाकर वायुयानों तक को चालक समेत आराम दिला सकने वाली हूँ। बच्चों की थकान का ध्यान करके उनके स्कूल–कॉलेज

बन्द करा सकने वाली हों।

जी हाँ, मैं दिल्ली हों।

फरवरी – मार्च में पधारो– तो ठीक है, कुछ–कुछ मानसिक शान्ति दिला सकने वाली हूँ।

धूप वर्षा दिखाकर आगामी मासों की चेतावनी दिलाने वाली हों।

अप्रैल–मई–जून–जुलाई में आओ–तो पुरी आफत बनकर आपका स्वागत करने वाली हूँ। अपनी गर्मी का प्रकोप दिखाकर, आपको भिन्न–भिन्न रोगों से रोगी बनाकर, डॉक्टरों के घर भरने वाली हों। विश्वास नही तो, देखो! सड़कों से भी तेल उगलाने वाली हूँ।

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।

अगस्त–सितम्बर में आओ–तो बरसात से आपके शरीर पर पित्त के दाने–फोड़े सजाकर, आपके कपड़े उतरवाकर

आपको पर्वतों की याद दिलाने वाली हूँ।

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।

अक्टूबर में आओ–तो बीती गर्मी से पीड़ित लोगों की त्राहि–त्राहि पुकार सुनवाकर, आपके कान के पर्दे

फटवाकर, आगामी चेतावनी देने वाली हूँ।

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।

जब भी आओ, जहाँ से भी आओ– तो आपके स्वागत के लिए कुतुबमीनार जैसे खड़ी रहने वाली हूँ।

किसी को निराश न कर, यथा शक्ति, यथाबुद्धि, रोज़ी दिलाने वाली हूँ।

खाली हाथ आये, पर खाली हाथ निराश कभी न लौटाने वाली हूँ।

शक्ति है, सोच है, तो बंगला गाड़ी देकर

अपने गर्भ में समाने वाली हूँ।

अपने गिर्द घुमाकर, देश के ऐतिहासिक स्थल दर्शाते, भूत, वर्तमान, भविष्य की गरिमा

दिखाकर सबको भारत पर गर्वित कराने वाली हूँ।

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।।

जी हाँ, मैं दिल्ली हूँ।।
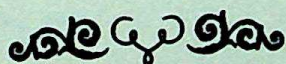
46

काश! मैं एक दरिया होता

काश! मैं एक दरिया होता।
मेरे जीवन का एक निश्चित मार्ग होता
दिन–रात थकान का नाम न होता
केवल परोपकार का सतत प्रवाह होता।
काश! मैं एक दरिया होता।

मैं जलाशय की शाखा बनकर खेतों में बहता
ऊसर पड़ें खेतों में उपयुक्त उपज उगाता
मरू–भूमि में सहार्द एक सरिता बहाता
मैं ग्रामों को दुल्हन बनाता
नगरों के कलों में घोड़े दौड़ाता।
काश! मैं एक दरिया होता।

मैं काली ज़हरीली चट्टानों का आलिंगन करता
जात–पात, भेदभाव का नाम मिटाता
पठारों को समतल करता
अपने अमृत जल से मित्रता का उपज उगाता

जहाँ बहता; शत्रुता का नाम न होता।
काश! मैं एक दरिया होता।

मैं हरित भरित खेत में परिपक्व खलिहान सजाता
हर प्रान्त के गोदाम सुखद भरता
मातृ—भूमि का कोश भरता
स्वयं को बाँटता रहता
शक्तिशाली देश देख; प्रति प्राणी गौरवान्वित बनता
काश! मैं एक दरिया होता।

मैं निर्धन की भूखमरी मिटाता
निस्सहाय के माथे बँधा 'बंधुआ मज़दूर' का कलंक मिटाता
अनाथ बच्चों का भरपेट देख विद्यालय का मार्ग दिखाता
सबका मिलजुल एक प्रफुल्लित उद्यान सजाता
काश! मैं एक दरिया होता।

मैं सुधाकार बन; प्रति नल में घुस जाता
नीरस पड़े कंठों को अपना पीयूष पिलाता
जटिल चित्तो में अपना कलरव भर जमी पड़ी काई हटाता
मन में कसी श्रृंखलाएं काटकर मातृभाव का पाठ पढ़ाता।
काश! मैं एक दरिया होता।

मैं सौभाग्यशाली होता
अपने तटों पर खड़े आलीशान मन्दिर, मस्जिद, गिरजे
गुरूदारों; सबके दर्शन कराता
प्रातः सायं वहां उठती गूंजती नादों–रागों में घुलमिल जाता
उनके स्वरों में निज–स्वर मिलाकर मैं भी ईश्वर से मिल जाता।
काश! मैं एक दरिया होता।

मेरे ऊपर सेतु सजते
आवागमन से दो तटों के वासी मिलते
मैं एक संगम–स्वर बन जाता
दो दिलों को एक कर; उन्हें हर्षित जीवन साथी बनाता
उनके घर बसाकर; अपना जीवन भी सफल बनाता।
काश! मैं एक दरिया होता।
काश! मैं एक दरिया होता!!
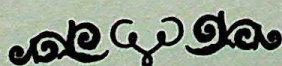
पुस्तक के बारे में

प्रस्तुत पुस्तक **'मेरी यादें'** अपने जीवनकाल के निज़ी अनुभवों के आधार पर पाठकगण के सम्मुख विनम्र रख रहा हूँ। मनुष्य को अपने जीवनकाल में किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है; विशेषकर जब देश प्रति ओर से आतंकवाद द्वारा घिरा हुआ हो, इस पुस्तक में दर्शाने का प्रयास किया गया है।

संस्मरण हों, तो मनोकामनाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है-जैसा इस पुस्तक के कई विषयों में दर्शित है।

आशा है पाठकगण प्रस्तुत पुस्तक **'मेरी यादें'** अपने शुभचिन्तकों सहित पढ़ने में रुचि लेंगे तथा अपने सुविचारों से लेखक को सूचित करके भविष्य के लिए प्रोत्साहित करते रहेंगे।

लेखक के बारे में

'मेरी यादें' पुस्तक के लेखक श्री **रोशन लाल काचरु** हैं जिन्होंने कश्मीर वादी के उच्चस्तर विद्यालय 'टैंडेल बिस्कू स्कूल' में अपना योगदान चालीस वर्ष देकर मुख्याध्यापक पद पर निवृत्ति प्राप्त की तथा खालसा हाई स्कूल में प्रधानाचार्य के पद पर रहकर विद्यालय की प्रतिष्ठा पर चार चाँद लगाते रहे तथा भिन्न भिन्न पुरस्कारों से विद्यालय और स्वयं सम्मानित होते रहे।

अध्यापन के क्षेत्र में 45 वर्ष का योगदान देकर यह अपने युग के एक प्रतिष्ठित अध्यापक सिद्ध हुए हैं। अपनी कर्मठता, कौशल्यता, निपुणता के बल से यह न केवल शिष्यों के अपितु सहकारियों एवं सार्वजनिक की दृष्टि में भी सदा सम्मान के पात्र रहे हैं।

Also available as an eBook